कुमारसम्भव ॥

महाकविकालिदासकृत

पण्डितकालीचरण के भाषानुवाद सहित

जिसमें

पार्वतीजीकी उत्पत्ति, ब्रह्माजीका तारकासुरसे के-लिये देवोंको शिक्षा, मदन दहन, रति विलाप, पार्वतीजी के तपका उदय, शिवजीका पार्वती से विवाह करनेके निमित्त हिमवान् के पास सप्तर्षियोंको भेजकर विवाहका निश्चय और शिव पार्वती विवाह वर्णन किया है ॥

जिसको

श्रीभार्गव वंशावतंस सकल कलाचातुरी धुरीण मुंशी नवलकिशोरजी (सी,आई,ई) ने अपने व्ययसे आगरा नगर पीपल मंडीनिवासि चौरासिया गौड़ वंशावतंस पण्डित गोकुलचन्द्रसूनु लखनऊ केनिंगकालेज के संस्कृत अध्यापक पण्डितकालीचरणजी से संस्कृत कुमारसंभव के सात सर्गका यथातथ्य पूरे श्लोक श्लोक का भाषानुवाद कराया ॥

पहलीबार

लखनऊ

मुंशीनवलकिशोर के छापेखाने में छपा
जून सन् १८९० ई०

इसयन्त्रालय में जो काव्य की पुस्तकें छपी हैं उनमें से कु
नीचे लिखी हैं ॥

नानार्थसंग्रहावली ॥

परिडत मातादीन शुक्ल रचित सातपोथीका संग्रह है (
संग्रहावली (२) रामायणमाला (३) रामायणगीताष्टक (
ज्ञानदोहावली (५) रससारिणी (६) तिथिबोध (७) मात्
कृत पिंगल अक्षर बहुत पुष्टहै कि वृद्ध और बालकभी पढ़स

कृष्णप्रिया ॥

मंगलीप्रसाद विरचित ब्रजबिलासकी तरहपर श्रीकृष्
का जन्म से वैकुण्ठ गमन पर्य्यन्त चरित्र है यह काव्याल
युक्त बहुतही सुन्दर पुस्तक है ॥

छन्दोर्णव पिंगल ॥

जिसमें मात्रावृत्त, वर्णवृत्त, मेरु, मर्कटी, पताका, ल
स्थापन रीति और सबछन्दों के दृष्टान्त सहित रूप हैं ॥

रसराज ॥

मतिरामजी कवि रचित जिससें अति मनोहरतासे अ
लंकार संयुक्त नायिकाभेद का वर्णन है ॥

कविकुलकल्पतरु ॥

भूषण चिन्तामणिजी रचित जिसमें अतिरुचिर छ
नायिकाभेद की पूरी बातें लिखी हैं ॥

शतसयीसटीक बिहारीलालजी रचित ॥

श्रीकृष्ण राधाजी के विषयमें सम्पूर्ण नायिक
वर्णन सातसौ दोहोंमें है और दोहेके भावार्थ के स
कवित्तभी हैं ॥

कुमारसम्भवकी भूमिका

प्रकट हो कि यह कुमारसम्भव काव्य महाकवि कालिदास रचित अत्यन्त मनोहर और अतीवरोचक है इसी उत्तमताके कारणसे कलकत्ता यूनीवर्सिटी की परीक्षाओं में भी यह काव्य संयुक्त है तिसपर भी इन दिनों में संस्कृत विद्याका कम प्रचार देख भार्गववंशावतंस सकलकला चातुरीधुरीण मुन्शी नवल-किशोर (सी, आई, ई) ने काव्य विद्याकी वृद्धिके लिये आगरा पुर पीपलमंडीनिवासि चौरासिया गौड़वंशावतंस पण्डित गोकुलचन्द्रसूनु लखनऊ केनिंगकालेजके संस्कृत अध्यापक पण्डित कालीचरणजीसे इसके सातसर्गोंका यथातथ्य पूरे श्लो क श्लोकका भाषानुवाद कराय रघुवंशकी रीतिपर अत्यन्त पुष्ट कागज पर विचित्र अक्षरोंसे अतिविललित छपवायाहै जिसके पढ़ने से भाषामात्रके जाननेवालेभी अच्छीविधिसे श्लोकका आशय समझ लेते हैं आशा है कि कलकत्ता यूनीवर्सिटी के प-रीक्षा देनेवाले विद्यार्थियोंको इस पुस्तकसे बहुत सहायतामिले क्योंकि फिर उनको पढ़ने जाने की आवश्यकता न होगी इसी पुस्तकके देखने से परीक्षोत्तीर्ण हो सकेंगे ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

कुमारसम्भवे

प्रथमस्सर्गः ।

अस्मिन्सर्गेपार्वत्युत्पत्तिर्वर्णिता ।

श्रीहेरम्बस्यरदनद्युतयः कामदा नृणाम् ।
देहभाभिश्शबलिता ईप्सितानि दिशन्तु वः ॥

१ – अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

२ – यं सर्व्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं
मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥

३ – अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

कुमारसम्भवकाव्यकाभाषानुवाद

कुमारसम्भवेप्रथमस्सर्गः

इस सर्ग में पार्वतीजीकी उत्पत्ति है

वारंवारमुदारसिद्धिसदनं हेरम्बपादाम्बुजं
स्मारंस्मारमसीमभक्तिकलया गीर्वाणगोष्ठीनुतम् ।
श्रीकालीचरणाभिधेन विदुषा लोकोपकारार्थिना
काव्यं हारि कुमारसम्भवमिदं व्याख्यायतेभाषया ॥

१ – उत्तर दिशा में देवता है आत्मा जिसका हिमालय नाम पर्वतों का राजा पूर्व और पश्चिम समुद्रों को प्रवेश करके पृथ्वी के मापने के दण्ड के समान स्थित है ॥

२ – सम्पूर्ण पर्व्वतोंने जिस् (हिमालय) को बछडा बनाकर दुहने में समर्थ मेरु के दुहनेवाले होनेपर पृथु की बताई हुई पृथ्वी से दीप्तमान मणि और औषधियां दुहीं ॥

३ – अनन्त रत्नों की उत्पत्ति का स्थान जिस् (हिमालय) का हिम अर्थात् पाला सौभाग्य का नाशकरनेवाला नहीं हुआ निश्चय करके एक दोष गुणोंके समूहोंमें चन्द्रमाकी किरणों में कलंक के समान डूबता है ॥

४ – यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां
सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्त्ति ।
वलाहकच्छेदविभक्तरागा-
मकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥

५ – आमेखलं सञ्चरतां घनानां
छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते
शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥

६ – पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं
यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तै-
र्मुक्ताफलैः केशरिणांकिराताः ॥

७ – न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र
भूर्ज्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणा-
मनंगलेखक्रिययोपयोगम् ॥

८ – यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान्
दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां
तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥

४ – जो (हिमालय) अप्सराओं के विलास के आभूषणों की बनानेवाली मेघों के खण्डों में लगा है राग जिसका (ऐसी) धातुमत्ता[१] को अकाल संध्या के समान शिखरों से धारण करता है ४॥

५ – मेखला पर्यन्त घूमनेवाले मेघों की नीचे के शिखरों में प्राप्त छाया को सेवन करके वृष्टि से कँपे हुये सिद्धलोग जिसके घामवाले शिखरों को सेवन करते हैं॥

६ – जिस् (हिमालय) में किरात लोग पाले के बहने से धुल गया है रुधिर जिनका (ऐसे) मारे हैं हाथी जिन्हों-ने (ऐसे) सिंहों के पंजों को विना देखे भी नखों के छिद्रों के द्वारा गिरे हुए मोतियों से मार्ग को जानते हैं॥

७ – जिस् (हिमालय) में धातुओं के रस से लिखे हैं अक्षर जिनमें (ऐसे) हाथियों के (मस्तक के) बिन्दुओं के समान रक्त भोजपत्र किन्नरों की स्त्रियों के कामदेव की चिट्टियों की क्रियाओं के उपकार को प्राप्त होते हैं॥

८ – जो (हिमालय) कन्दरारूपी मुख से उत्पन्न हुए पवन से कचिकोंके छिद्रभागों को पूर्ण करता हुआ उच्चस्वर से गानेवाले किन्नरों के सिखानेवाले पन को प्राप्त होने के लिये मानों इच्छा करता है॥

---

१ धातु के धारण करने वाले पनको॥

९ – कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं
विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः
सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥

१०–वनेचराणां वनितासखानां
दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्या
मतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥

११–उद्वेजयत्यंगुलिपार्ष्णिभागान्
मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।
न दुर्व्वहश्रोणिपयोधरार्त्ता
भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥

१२–दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु
लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणंप्रपन्ने
ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥

१३–लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभै-
रितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं
कुर्व्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्य्यः ॥

१४–यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां
यदृच्छया किम्पुरुषांगनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बा-
स्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ॥

९ – जिस् (हिमालय) में हाथियों से कपोलों की खुजली मिटाने के लिये रगडे गये सालू के वृक्षों के टपकेहुए दूध से पैदा हुई गन्ध शिखरों को सुगन्धित करती है ॥

१०–जिस में रात्रि के समय कन्दरारूपी गृहों के भीतर भरी हैं कान्तियां जिनकी (ऐसी) औषधियां स्त्रियां हैं मित्र जिनकी (ऐसे) किरात लोगों के विना तेल के भोग के दीपक (रूप) होती हैं ॥

११–जहां (हिमालय में) पाषाणरूप होगया है पाला जिस् में उँगलियों के पोरुओं के कँपानेवाले मार्ग में नितम्ब और पयोधरों से व्याकुल किन्नरों की स्त्रियां (अपनी) मन्द गति को नहीं छोडती हैं ॥

१२–जो (हिमालय) दिन में मानों डरे हुए कन्दराओं में भरे हुए अन्धकार को सूर्य्य से रक्षा करता है उच्च पुरुषों को शरण में आये हुए नीचमें भी सज्जन के समान अवश्य ममता है ॥

१३–सुरागायें पूंछों के इधर उधर हिलाने से फैल रही है शो-भा जिनकी चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत चामरों से जिस् (हिमालय) के गिरिराज शब्दको अर्थयुक्त करती हैं ॥

१४–जहां (हिमालय में) वस्त्रों के हर लेने से लज्जा युक्त किन्नरों की स्त्रियों के भाग्य से कन्दरारूपी गृहों के द्वारों में लम्बायमान मण्डलवाले मेघ नेपथ्य (कनातरूप) होते हैं ॥

१५–भागीरथीनिर्झरशीकराणां
वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥

१६–सप्तर्षिहस्तावचितावशेषा-
ण्यधो विवस्वान् परिवर्त्तमानः ।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि
प्रबोधयत्यूर्द्ध्वमुखैर्म्मयूखैः ॥

१७–यज्ञांगयोनित्वमवेक्ष्ययस्य
सारं धरित्रीधरणक्षमञ्च ।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं
शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥

१८–स मानसीं मेरुसखः पितॄणां
कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीया-
मात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥

१९–कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते
स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगे ।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या
गर्भोऽभवद्भूधरराजपत्न्याः ॥

२०–असूत सा नागवधूपभोग्यं
मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्तशत्रा-
ववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥

१५–गंगा जी के प्रवाह के कणों का लेजानेवाला बारम्बार कँपाये हैं कल्पवृक्ष जिसने (और) पृथक्२ करी हैं मयूरों की पूंछें जिसने (ऐसा) जिस (हिमालय) का पवन मृगों के ढूंढनेवाले किरात लोगोंसे सेवन कियाजाताहै॥

१६–सप्तर्षियों के हाथोंकरके तोड़ेहुओं से अवशिष्ट जिसके ऊपर के तड़ागों में पैदाहुए कमलों को नीचे घूमनेवाले सूर्य्य ऊर्ध्वमुखी किरणों से प्रफुल्लित करते हैं ॥

१७–जिस (हिमालय) का यज्ञांग पैदा करनापन और पृथ्वी के धारण करने के योग्य बल जानकर विधाता ने आपही कल्पितहै यज्ञ का भाग जिसमें (ऐसा) शैलाधिपत्य दिया ॥

१८–मेरुपर्व्वतका मित्र मर्य्यादाका जाननेवाला वह (हिमालय) पितरों की मनके संकल्प से पैदाहुई मुनिलोगों के भी माननेके योग्य अपने सदृश मैनासे कुलकी प्रतिष्ठा के लिये विधिपूर्व्वक विवाह करता हुआ ॥

१९–इसके अनन्तर कालके क्रमसे उन (मैना और हिमवान्) का स्वरूप के योग्य भोग के प्रारम्भ होनेपर मनोरम यौवन के धारण करनेवाली पर्वतों के राजा की स्त्री के गर्भ हुआ ॥

२०–वह (मैना) नागों की कन्याओं से विवाह करनेवाले समुद्र से की है मित्रता जिसने पक्षों के काटनेवाले इन्द्र के क्रुद्ध होनेपर भी वज्र के प्रहारों की वेदना के न जाननेवाले मैनाक को उत्पन्न करती हुई ॥

२१—अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता
दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।
सती सती योगविसृष्टदेहा
तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे॥

२२—सा भूधराणामधिपेन तस्यां
समाधिमत्यामुदपादि भव्या।
सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां
नीताविवोत्साहगुणेन सम्पत्

२३—प्रसन्नादिक् पांशुविविक्तवातं
शंखस्वनानन्तरपुष्पवृष्टिः।
शरीरिणां स्थावरजंगमानां
सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव॥

२४—तया दुहित्रा सुतरां सवित्री-
स्फुरत्प्रभामण्डलया चकाशे।
विदूरभूमिर्नवमेघशब्दा-
दुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव॥

२५—दिने दिने सा परिवर्द्धमाना
लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान् विशेषान्
ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि॥

२६—तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना
बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव।
उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम॥

२१–इसके अनन्तर (मैनाकके जन्मके पीछे) दक्षकी कन्या शिवजी की प्रथम स्त्री पतिव्रता सती पिता के अनादर से प्रेरित योगमार्ग से शरीर त्यागनेवाली (फिर) जन्म धारण करने के लिये उस शैलवधू को प्राप्त हुई ॥

२२–कल्याणवाली वह (सती) पर्व्वतोंके राजा (हिमालय) से नियमवाली उस (मैनका) में अच्छे आचरण से नहीं भ्रष्टहुई नीति में उत्साह शक्तिसे सम्पत्ति के समान उत्पन्न कीगई ॥

२३–निर्मल दिशावाला धूल से रहित वायुवाला शंखध्वनि के पीछे पुष्प वृष्टिवाला उस (पार्वती) के जन्म का दिन स्थावर और जंगम प्राणियों के सुखके लिये हुआ ॥

२४–प्रकाशमान प्रभामण्डलवाली उस कन्या से जननेवाली नवीन मेघ शब्द से उत्पन्न हुई रत्नों की शलाका से पर्व्वत की भूमि के समान अत्यन्त शोभित हुई ॥

२५–प्राप्त उदयवाली प्रतिदिन बढ़नेवाली वह (पार्वती) चन्द्रमा की कला के तुल्य कांति से भरेहुए अंगों को चांदनीसे छिपीहुई अन्य कलाओंके समान पुष्ट करतीहुई ॥

२६–उस बन्धुओंकी प्यारीको बन्धुजनोंने आभिजन (पितृसंबन्ध)नामसे पार्वती यह (कहकर) बुलाया पीछे हे पार्वती मत (तप करो) इसप्रकारसे माता से तपके लिये निषेध की हुई सुमुखी (पार्वती)उमा नामको प्राप्त हुई ॥

---

१ उइससे हे संबोधनका आशयहै और मासे मतअर्थात् तपके निषेधकाआशयहै ॥

२७–महीभृतः पुत्रवतोपि दृष्टि-
स्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते
द्विरेफमाला सविशेषसंगा॥

२८–प्रभामहत्या शिखयेव दीप-
स्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी
तया स पूतश्च विभूषितश्च॥

२९–मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः
सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां
क्रीडारसं निर्विशतीवबाल्ये॥

३०–तां हंसमालाः शरदीव गंगां
महौषधिं नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले
प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः॥

३१–असम्भृतं मण्डनमंगयष्टे-
रनासवाख्यं करणं मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं
बाल्यात् परं साथ वयः प्रपेदे॥

३२–उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं
सूर्य्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरश्रशोभि
वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

२७—पुत्रवान् भी पर्व्वत की दृष्टि उस सन्तान (पार्व्वती) में तृप्तिको नहीं प्राप्तहुई अवश्य अनन्त पुष्पवाले वसन्तकी भ्रमरों की माला आम के पुष्पमें अत्यन्त आसक्त (होती है) ॥

२८—बड़े प्रकाशवाली शिखासे दीपकके समान तीनमार्गसे जानेवाली गंगाजिसे स्वर्गके मार्गकेसमान संस्कारवाली वाणी से पण्डितके समान उस (पार्वती) से वह (हिमवान्) पवित्र और विभूषित (हुआ) ॥

२९—वह (पार्वती) बाल्यावस्थामें क्रीड़ाके आनन्दको मानों भोगकररहीसी सखियोंके मध्यमें प्राप्त गंगाजीके किनारों में वेदिकाओंसे कन्दुकों (गेंदों) से और बनाई हुई पुतलियोंसे बारंबार क्रीड़ा करतीहुई ॥

३०—बुद्धिमती उस (पार्वती) को उपदेशके समयमें पूर्वजन्मकी विद्या शरदकाल में गंगाजीको हंसोंकीमाला के समान रात्रिमें महौषधि को अपनी दीप्तियों के समान प्राप्त हुईं ॥

३१—इसके उपरान्त वह (पार्वती) अंगरूपी यष्टी का विनायत्नके सिद्ध शृंगार (रूप) मदिरानामके विना मद की करनेवाली कामकी पुष्पोंसे रहित अस्त्रयौवनावस्था को प्राप्तहुई ॥

३२—नवीन यौवनसे प्रकट उस (पार्वती) का शरीर शलाकाके द्वारा रंगोंसे दीप्तिमान चित्रके समान सूर्य्य की किरणों से फूले हुये कमलके समान न्यूनाधिकतासे रहित शोभितहुआ ॥

३३–अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभि-
र्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां
स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्॥

३४–सा राजहंसैरिव सन्नतांगी
गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु।
व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धै-
रादित्सुभिर्नूपुरशिञ्जितानि॥

३५–वृत्तानुपूर्व्वे च न चातिदीर्घे
जंघे शुभे सृष्टवतस्तदीये।
शेषांगनिर्म्माणविधौविधातु-
र्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः॥

३६–नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वा-
देकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं
जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः॥

३७–एतावता नन्वनुमेयशोभि
काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः।
आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चा-
दनन्यनारीकमनीयमङ्कम्॥

३८–तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं
रराज तन्वी नवलोमराजिः।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य
तन्मेखलामध्यमणेरिवार्च्चिः॥

३३–उन्नत अंगुष्ठोंके नखोंकी प्रभाके द्वारा बेधड़क रखने से मानों रागको वमनकररहे उस (पार्वती) के चरण पृथ्वीमें चलनेवाली गुलाबकी शोभाको चुरातेथे ॥

३४–उपदेशके बदले उपदेशके लोभी नूपुरके शब्दों के ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाले राजहंसोंसे झुके हुये अंगवाली वह (पार्वती) विलासोंसे युक्त पादन्यासवाले गमनमें मानों सिखाईगई ॥

३५–वृत्तानुपूर्व (गोपुच्छाकार) थोड़ी लम्बी और मंगलरूप उसकी जंघाओंके बनानेवाले ब्रह्माको और दूसरे अंगों के बनानेकी रीतिमें फिर बनानेके योग्य कान्तिमें मानों यत्न उत्पन्न हुआ ॥

३६–नागेंद्रोंकी सूड़ें त्वचामें कठोर होने से केले अति शीतल होनेसे लोकमें विशाल रूपको पाकरभी उस(पार्वती) की जंघाओंके उपमानों से रहित हुये ॥

३७–निन्दासे रहित (पार्वती) का नितम्बस्थल इतनेहीसे अनुमान करने के योग्य शोभावाला हुआ जो पिछे से महादेवजीसे अन्यस्त्रियोंके कामनाके अयोग्यअंकमें आरोपण कियागया ॥

३८–कटिसूत्रको उल्लंघनकर गंभीरनाभिके छिद्रमें प्रवेश करनेवाली उस (पार्वती) की नवीन रोमावली उसकी मेखलाके मध्यवर्त्ती नीलमणिकी प्रभाके समान शोभितहुई ॥

३९–मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या
बलित्रयं चारु बभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्॥

४०–अन्योऽन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः
स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम्।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य
मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम्॥

४१–शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्य्यौ
बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य
यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥

४२–कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य
मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव
साधारणो भूषणभूष्यभावः॥

४३–चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते
पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उपासुखन्तुप्रतिपद्यलोला
द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः॥

४४–पुष्पं प्रबालोपहितं यदि स्या-
न्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्य्याद्विशदस्य तस्या-
स्ताम्रौष्ठपर्य्यस्तरुचः स्मितस्य॥

३९–सूक्ष्म कटिवाली वह बाला मध्यभागसे सुन्दर त्रिबली को कामके चढ़नेके लिये नवीन यौवनसे बनायेहुए मानों सोपान (सीढ़ी) को धारण करती हुई॥

४०–परस्पर संघर्षित गौर वर्ण कमलाक्षी (पार्वती) के दोनों स्तन इस प्रकारसे बढ़े जैसे कि श्याममुखवाले उन (स्तनों) के मध्य में मृणालसूत्र काभी अवकाश अलभ्य (था)॥

४१–उसके भुज सिरसेके फूलसे भी अधिक सुकुमार (हैं) यह मुझे बड़ा आश्चर्य्य है जो भुज पराजित हुएभी कामदेवने महादेवजी के कण्ठकी फांसी बनाये॥

४२–स्तनोंसे उन्नत उस (पार्वती) के कण्ठका और वर्त्तुलाकार मोतियोंके समूहोंका परस्पर शोभा उत्पन्न करनेसे भूषण और भूषितभाव समान हुआ॥

४३–चंचल शोभा चन्द्रमाको प्राप्त होनेपर कमलके गुणोंको नहीं सेवन करती है और कमल में प्राप्तहोनेपर चन्द्रमा की शोभाको नहीं सेवन करती है और उमाके मुखको प्राप्तहोकर दोनोंमें वर्त्तमान आनन्दको प्राप्तहुई॥

४४–पुष्प जो पत्तेपर रक्खाहोय अथवा मोती निर्मल मूंगेपर वर्त्तमानहो तो श्वेत रक्त ओष्ठोंपर फैली है शोभाजिसकी (ऐसी) तिस (पार्वती) के हास्यकी समानताकरे॥

४५–स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव
प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा
श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना॥

४६–प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेष-
मधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्य-
स्ततो गृहीतं नु मृगांगनाभिः॥

४७–तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव
कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या।
तां वीक्ष्य लोलां चतुरामनंगः
स्वचापसौन्दर्य्यमदं मुमोच॥

४८–लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्या-
दसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्यु-
र्बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः॥

४९–सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन
यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्ना-
देकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव॥

५०–तां नारदः कामचरः कदाचित्
कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकबधूं भवित्रीं
प्रेम्णा शरीरार्द्धहरां हरस्य॥

४५–मधुर बोलनेवाली उस (पार्वती) के मानों अमृतचूनेवाले स्वरसे बोलनेपर कोकिला भी बड़े कठोर स्वरसे बजाई हुई बीणाके समान सुननेवाले को असहच शब्द वाली (विदित) होती है ॥

४६–बड़ी वायुवाले स्थानके कमलकी समान चकित होकर देखना विशाल नेत्रवाली (पार्वती) का मृगियों से उस (पार्वती) ने सीखा अथवा मृगियोंने उस (पार्वती) से सीखा ॥

४७–बड़ी रेखावाली उस (पार्वती) की भृकुटियोंकी शलाकों के द्वारा अंजनसे मानों बनाई गई जो कान्ति विलासमें सुभग उस (कान्ति) को देखकर कामने अपने धनुषके सौन्दर्य्य मदको छोड़दिया ॥

४८–पशुओंके चित्तमें जो लज्जा होय (तो) निस्सन्देह पर्वतराजपुत्रीके केशोंके समूहको देखकर सुरागायें बालों के प्यारेपनेको शिथिलकरें ॥

४९–वह (पार्वती) ब्रह्मासे एक स्थानमें सौन्दर्य्य की देखने की इच्छासे मानों बड़े यत्नसे यथायोग्य स्थानोंमें क्रमसे स्थापित की गई सम्पूर्ण उपमाकी द्रव्यों के इकट्ठे करनेसे बनाईगई ॥

५०–इच्छापूर्वक विचरनेवाले नारद ने किसी समय पिता (हिमवान्) के समीप उस कन्या रूप (पार्वती) को देखकर निश्चय प्रेम से शिवजीके आधे शरीरकी हरनेवाली एकपत्नी होनेवाली (है यह) आज्ञादी ॥

५१—गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्या-
स्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः।
ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूत-
मर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम्॥

५२—अयाचितारं न हि देवदेव-
मद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक।
अभ्यर्थनाभंगभयेन साधु-
र्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे॥

५३—यदैव पूर्वे जनने शरीरं
सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज।
तदा प्रभृत्येव विमुक्तसंगः
पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत्॥

५४—स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा
गंगाप्रवाहोक्षितदेवदारु।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि
किञ्चित् क्वणत्किन्नरमध्युवास॥

५५—गणा नमेरुप्रसवावतंसा
भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः
शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु॥

५६—तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः
समुल्लिखन् दर्पकलः ककुद्मान्।
दृष्टः कथञ्चिद्गवयैर्विविग्नै-
रसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद॥

५१–पिता (हिमवान्) उस (नारद के वचन) से इस (पार्वती) की युवावस्था होनेपर भी अन्य वरों की अभिलाषा को त्यागकर स्थितहुए अवश्य मंत्रों से पवित्र हव्य को अग्नि से अन्य और ... नहीं प्राप्त होते हैं ॥

५२– ... महादेव जी को ... वान् हुए सज्जन ... ष्टि विषय में भी ... हैं ॥

५३– ... र्वजन्म में जिस ... उसी समयसे ... अपत्नीक हुए

५४– ...) तपके निमित्त ... युक्त कस्तूरीकी ... हिमालय के ...

५५–क ... व स्पर्शवाले ... गण लोग ... ॥

५६–हिमके समूहरूपी शिलाओंको खुराग्रोंसे विदीर्ण करता-हुआ अभिमानसे मधुरध्वनिवाला भयभीत सुरागायोंसे दुःखसे देखागया वृषभ (नन्दी) सिंहोंके शब्दोंको न सहसकनेपर उच्चस्वरसे गर्जा ॥

५१–गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्या-
स्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः ।
ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूत-
मर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥

५२–अयाचितारं न हि देवदेव-
मद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक ।

नेऽर्थे ॥

र्जे ।

त् ॥
मा

य
ास ॥

ः ।
दुः

समुल्लिखन् दर्पकलः ककुद्मान् ।
दृष्टः कथञ्चिद्गवयैर्विविग्नै-
रसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद ॥

५१–पिता (हिमवान्) उस (नारद के वचन) से इस (पार्वती) की युवावस्था होनेपर भी अन्य वरों की अभिलाषा को त्यागकर स्थितहुए अवश्य मंत्रों से पवित्र हव्य को अग्नि से अन्य और तेज नहीं प्राप्त होते हैं ॥

५२–पर्वत (हिमवान्) नहीं माँगने वाले महादेव जी को कन्या ग्रहण कराने को नहीं उत्साहवान् हुए सज्जन याचना के निष्फल होनेके भय से अभीष्ट विषय में भी उदासिनता अवलम्बन (ग्रहण) करते हैं ॥

५३–सुन्दर दांतवाली उस (पार्वती) ने पूर्वजन्म में जिस समय दक्षके क्रोधसे शरीरको त्यागकिया उसी समयसे लेकर शिवजी विषयोंके संगको छोड़कर अपत्नीक हुए (अन्यस्त्री को नहीं ग्रहण किया)॥

५४–चर्मवस्त्रवाले एकाग्रचित्त वह (शिवजी) तपके निमित्त गंगानदीके प्रवाहसे सिंचेहुये कल्पवृक्षयुक्त कस्तूरीकी सुगन्धिवाले कुछ गान कररहे किन्नरोंवाले हिमालय के शिखरमें निवासी हुये ॥

५५–कल्पवृक्षके पुष्पोंके शिरोभूषणोंसे युक्त सुख स्पर्शवाले भोजपत्रोंको धारण करेहुए मैनशिलसे लिप्त गण लोग शिलाजीतसे व्याप्त शिलातलों में स्थित हुए ॥

५६–हिमके समूहरूपी शिलाओंको खुराग्रोंसे विदीर्ण करताहुआ अभिमानसे मधुरध्वनिवाला भयभीत सुरागायोंसे दुःखसे देखागया वृषभ (नन्दी) सिंहोंके शब्दोंको न सहसकनेपर उच्चस्वरसे गर्जा ॥

५७–तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं
स्वमेवमूर्त्त्यन्तरमष्टमूर्त्तिः।
स्वयं विधाता तपसः फलानां
केनापि कामेन तपश्चचार॥

५८–अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः
स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधनायास्य सखीसमेतां
समादिदेश प्रयतां तनूजाम्॥

५९–प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः
शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि तएव धीराः॥

६०–अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा
नियमविधिजलानां वर्हिषाञ्चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
उमोत्पत्तिर्नाम प्रथमस्सर्गः॥ १॥

———

५७–तपके फलोंको स्वयंदेनेवाले अष्टमूर्त्ति (शिवजी) उस (शिखर) में अपनीही अन्यमूर्त्ति समिधोंसे दीप्तमान अग्निको स्थापन करके किसी कामनासे शिवजी तप करतेहुये ॥

५८–पर्वतोंके राजा (हिमवान्) ने अमूल्य देवता लोगों से पूजित उन (शिवजी) को पाद्यसे पूजनकरके इन (शिवजी) के आराधनके लिये सखियोंसे युक्त पवित्र कन्याको आज्ञादी ॥

५९–शिवजीने समाधिकी विघ्नरूपभी सेवाकरनेको इच्छा कररही उस (पार्वती) को अंगीकारकिया विकारके हेतु होनेपरभी जिनके चित्त विकारको नहीं प्राप्तहोते हैं वही धीर हैं ॥

६०–सुन्दर केशवाली उस (पार्वती) ने पूजाके अर्थ पुष्पों की तोडनेवाली वेदीके स्वच्छ करने में चतुर नित्य कर्म के अनुष्ठानके लिये जल और कुशाओंकी लानेवाली होने पर उन (शिवजी) के शिरके चन्द्रमाकी किरणोंसे निवृत्त हुए हैं परिश्रम जिसके ऐसी होकर प्रतिदिन महादेवजीका पूजन किया ॥

इतिश्रीकालिदासकृतौकुमारसम्भवेमहाकाव्ये
भाषानुवादेउमोत्पत्तिर्नामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

———

कुमारसम्भवे

द्वितीयस्सर्गः ॥

---

१ – तस्मिन् विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः ।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायम्भुवं ययुः ॥

२ – तेषामाविरभूद्ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम् ।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव ॥

३ – अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥

४ – नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥

५ – यदमोघमपामन्तरुप्तं वीजमज ! त्वया ।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे ॥

६ – तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥

कुमारसम्भवे

ब्रह्माभिगमनोनामद्वितीयस्सर्गः ॥

१ – उस समय (पार्वतीकी सेवा के समय) तारक (दैत्य) से दुःखित देवतालोग इन्द्रको आगे करके ब्रह्माके स्थान को गये ॥

२ – म्लानमुखश्रीवाले देवतालोगोंके ब्रह्मासुंदेहुये कमलवाले तड़ागोंके प्रातःकाल सूर्य्यके समान प्रकट हुए ॥

३ – इसके अनन्तर वह सम्पूर्ण (देवता) चतुर्मुख विद्याओं के स्वामी संसारके उत्पन्न करनेवाले (ब्रह्मा) को नमस्कार करके अर्थयुक्त वाणियोंसे स्तुति करतेहुए ॥

४ – (हे भगवन्) सृष्टिके प्रथम एक रूपवाले पीछे (सृष्टिके प्रारम्भके समय) तीनों गुणों के विभाग के लिये विभाग को (सत्त्वादि गुणोंकी उपाधिको प्राप्त होनेवाले) तीन मूर्त्ति (ब्रह्मा विष्णु महेश) वाले आपको नमस्कार है ॥

५ – नहीं उत्पन्न होनेवाले जलोंके मध्यमें आपने जो अमोघ वीर्य्य छोड़ा उस (आपके वीर्य्य) से चराचर संसार उत्पन्न हुआ उस (संसार) के कारण गाये जाते हो ॥

६ – एक (सृष्टिके प्रथम) आप तीन अवस्था (ब्रह्मा विष्णु महेश) ओं से अपनी शक्ति को विस्तृत कररहे प्रलय स्थिति सर्ग (उत्पत्ति) के हेतुताको प्राप्तहौ ॥

७ – स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ॥

८ – स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिन्दिवस्य ते।
यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ॥

९ – जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः॥

१०–आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे॥

११–द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः।
व्यक्तोव्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु॥

७ – स्त्री और पुरुषके उत्पन्न करनेकी इच्छासे दो प्रकारके शरीर करनेवाले आपके शरीरके भाग (स्त्री और पुरुष) हैं वही (भाग) उत्पन्न हुए जगत् के माता पिता (प्राचीनों से) कहे गये हैं ॥

८ – अपने समयके परिमाणसे रात्रिदिनके विभाग करनेवाले आप का जो सोना और जागना है वही प्राणियों की सृष्टि और प्रलय है ॥

९ – (हे भगवन्) आप संसारके कारणहैं और स्वयं अयोनि (अकारण) हैं आप जगत् के नाश करने वाले हैं और स्वयं अनन्त (अन्तरहित) हैं आप जगत् के आदि हैं और स्वयं अनादि (आदिरहित) हैं आप जगत् के ईश हैं और स्वयं अनीश (ईशरहित) हैं ॥

१०–(हे भगवन् आप अपने को आपही जानते हो अपने को अपनेही में उत्पन्न करते हो और अपनेही में समर्थ आत्मा से लीन होते हो ॥

११–(हे भगवन्) आप द्रव (सरित्समुद्रादिकों के समान रसात्मक) हो अति संयोग से कठिन (पर्व्वतादिकों के तुल्य)हो स्थूल (इन्द्रियोंके ग्रहणके योग्य घटादिकों के समान) हो सूक्ष्म (परमाणु के समान) हो लघु (उत्क्षेपण के योग्य रुई आदिकों के समान) हो गुरु (हेमाद्रि पर्व्वतों के समान) हो व्यक्त (कार्य्य रूप) हो और कारण रूप हो इसप्रकार से अणिमादिक सिद्धियों में आप यथाभिलाष हो ॥

१२–उद्घातः प्रणवो यासां न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम्।
कर्म्म यज्ञः फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो गिराम्॥

१३–त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम्।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः॥

१४–त्वं पितृणामपि पिता देवानामपि देवता।
परतोऽपि परश्चासि विधाता वेधसामपि॥

१५–त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः।
वेद्यश्च वेदिता चासि ध्याता ध्येयश्च यत्परम्॥

१६–इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा यथार्थां हृदयंगमाः।
प्रसादाभिमुखो वेधाः प्रत्युवाच दिवौकसः॥

१७–पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयी॥

१८–स्वागतं स्वानधीकारान् प्रभावैरवलम्ब्य वः।
युगपद्युगबाहुभ्यः प्राप्तेभ्यःप्राज्यविक्रमाः॥

१२–(हे भगवन्) जिन वाणियों का आरम्भ प्रणव है और जिन वाणियों का तीन (उदात्तानुदात्त स्वरित) स्वरों से उच्चारण होता है जिनके प्रतिपादन करने के योग्य यज्ञहै और फलस्वर्गहैतिन (वेद)वाणियोंकेआपकारण हो॥

१३–(हे भगवन्) आप को पुरुष के अर्थों की प्रवृत्त करनेवाली प्रकृति कहते हैं और आपहीको उस (प्रकृति) के देखनेवाले उदासीन पुरुष जानते हैं ॥

१४–(हे भगवन्) आप पितरों के भी पिता हो देवताओं के भी देवता हो परे से परे हो दक्षादिकों के भी विधाता हो ॥

१५–सदैव सिद्ध आपही हव्यरूप और यजमान हो अन्नरूप और भोक्ता हो साक्षात् करने के योग्य और साक्षात् करता हो ध्यान करनेवाले और जो सब से परे ध्यान करने के योग्य वस्तु है वह हो ॥

१६–ब्रह्मा ऐसी उन (देवताओं) से यथार्थ मनोहर स्तुतियों को सुनकर वरदेनेको उद्यत होकर देवताओंसे बोले॥

१७–चारप्रकार के शब्दों की प्रवृत्ति पुरातन कवि उन (ब्रह्मा) के चारों मुखों से कहगिई सफल हुई (चारों मुखों के द्वारा कहने से) उसका चारप्रकार का होना चरितार्थ (सफल) हुआ ॥

१८–हे बड़े पराक्रमवाले (देवतालोगो अपने अधिकारों को अपने प्रभावों से अवलम्बन करके भी एकही समय प्राप्तहुए दीर्घ भुजावाले आपलोगों का आगमन अच्छा है (अथवा नहीं) ॥

१९–किमिदं द्युतिमात्मीयां न बिभ्रति यथा पुरा।
हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि वः॥

२०–प्रशमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णसुरायुधम्।
वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रीव लक्ष्यते॥

२१–किञ्चायमरिदुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः।
मन्त्रेण हतवीर्य्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः॥

२२–कुबेरस्य मनःशल्यं शंसतीव पराभवम्।
अपविद्धगदोबाहुर्भग्नशाख इवद्रुमः॥

२३–यमोऽपि विलिखन् भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम्॥

२४–अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः।
चित्रन्यस्ता इव गताः प्रकामालोकनीयताम्॥

२५–पर्य्याकुलत्वान्मरुतां वेगभंगोऽनुमीयते।
अम्भसामोघसंरोधः प्रतीपगमनादिव॥

२६–आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः।
रुद्राणामपि मूर्द्धानः क्षतहुङ्कारशंसिनः॥

१९–(हे वत्सलोगो) हिम से हीन तेजवाले नक्षत्रों के समान आप लोगों के मुख पूर्व्व के समान अपनी कान्ति को नहीं धारण करते हैं यह क्या है ॥

२०–ज्वालाओं के शान्त होने से विचित्र प्रभाओं का नहीं उत्पन्न करनेवाला इन्द्र का वज्र कुण्ठित धार के समान दिखाई देता है ॥

२१–और यह शत्रुओं से न सहने के योग्य वरुण की फांसी मंत्र से नष्ट वीर्य्य (विष) वाले सर्प की दीनता को प्राप्त है ॥

२२–गदा से रहित टूटी शाखावाले वृक्ष की समान कुवेर की भुजा मन के (चुभेहुए) बाण के समान अनादर को मानों कहरही है ॥

२३–अस्त कान्तिवाले दण्ड से यमराज भी पृथ्वी को लिख रहे इस अमोघ (दण्ड) में बुझीहुई उल्का की अशक्तिता को करते हैं ॥

२४–और प्रताप के नाश से शीतल यह (द्वादश) सूर्य्य किस हेतु से चित्र में लिखे के समान यथेष्ट दर्शनीयता को प्राप्त हैं ॥

२५–पवनों का व्याकुल होने से वेग का भंग, जलों का प्रतिकूल गवन से अवरोध समान अनुमान कियाजाताहै ॥

२६–अनादर होने के खेद से नत (नवेहुए) जटाजूटों में व्याप्त चन्द्रमा की किरणवाले रुद्रों के भी मस्तक नष्ट हुए हुंकार के कहनेवाले हैं ॥

२७—लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं यूयं किं बलवत्तरैः।
अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः॥

२८—तद्ब्रूत वत्साः! किमितः प्रार्थयध्वं समागताः।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता॥

२९—ततो मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना।
गुरुं नेत्रसहस्रेण नोदयामास वासवः॥

३०—स द्विनेत्रं हरेश्चक्षुः सहस्रनयनाधिकम्।
वाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्जलजासनम्॥

३१—एवं यदात्थ भगवन्नामृष्टं नः परैः पदम्।
प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि प्रभो!॥

३२—भवल्लब्धवरोदीर्णस्तारकाख्यो महासुरः।
उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः॥

३३—पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्।
दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते॥

३४—सर्वाभिः सर्वदा चन्द्रस्तं कलाभिर्निषेवते।
नादत्ते केवलां लेखां हरचूडामणीकृताम्॥

२७–पूर्व समय में प्रतिष्ठा पानेवाले आप लोग बड़े बलवान् शत्रुओं से विशेष शास्त्रों से सामान्य शास्त्रों के समान क्या प्रतिष्ठा भंग कियेगये हो ॥

२८–इस (कारण) से हे वत्सलोगो सब मिलकर आयेहुए (तुमलोग) मुझ से क्या प्रार्थना करते हो कहो मुझ में लोकों की सृष्टि और तुमलोगों में रक्षा स्थित है ॥

२९–इसके उपरान्त इन्द्र ने बृहस्पति को मन्द पवन से कँपेहुए कमल समूह के समान शोभित सहस्र नेत्रों से प्रेरणा की ॥

३०–इन्द्र के सहस्र नेत्रों से अधिक दोनेत्रवाले नेत्र स्वरूप वह (बृहस्पति) हाथ जोड़कर विधाता (ब्रह्मा) से यह बोले ॥

३१–हे भगवन् जो आप ने कहा वह सत्य है हम लोगों का अधिकार शत्रुओं से दबायागया है हे प्रभो सब पुरुषों के अन्तर्यामी क्यों न जानियेगा ॥

३२–आप से पायेहुये वरदान के द्वारा उद्दण्डतारक नाम बड़ा दैत्य धूम्रकेतु के समान लोगों के उपद्रव के लिये उदय हुआ है ॥

३३–जिस (तारकासुर) के पुर में सूर्य्य उतनाही तेज विस्तार करते हैं जितने से कि क्रीड़ा की वापियों में कमल फूलें ॥

३४–चन्द्रमा उस (तारकासुर) को सब काल में (कृष्णपक्ष मेंभी) सम्पूर्ण कलाओंसे सेवन करताहै अकेली शिवजी से चूड़ामणि बनाईगई कला को नहीं ग्रहण करता है ॥

३५–व्यावृत्तगतिरुद्याने कुसुमस्तेयसाध्वसात्।
न वाति वायुस्तत्पार्श्वे तालवृन्तानिलाधिकम्॥

३६–पर्य्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसम्भारतत्पराः।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते॥

३७–तस्योपायनयोग्यानि रत्नानि सरितां पतिः।
कथमप्यम्भसामन्तरानिष्पत्तेः प्रतीक्षते॥

३८–ज्वलन्मणिशिखाश्चैनं वासुकिप्रमुखा निशि।
स्थिरप्रदीपतामेत्य भुजंगाः पर्य्युपासते॥

३९–तत्कृतानुग्रहापेक्षी तं मुहुर्दूतहारितैः।
अनुकूलयतीन्द्रोऽपि कल्पद्रुमविभूषणैः॥

४०–इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्ज्जनः॥

४१–तेनामरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः।
अभिज्ञाश्छेदपातानां क्रियन्ते नन्दनद्रुमाः॥

३५—पवन पुष्पों की चोरी के भय से पुष्पवाटिकाओं में न चलकर उस (तारकासुर) के समीप में पंखे की वायु से अधिक नहीं चलता है ॥

३६—ऋतु अपनी क्रमपूर्व्वक सेवा को त्यागकरके पुष्पों के संग्रह में तत्पर उद्यानपाल (मालियों) के समान उस (तारकासुर) को सेवन करती हैं ॥

३७—समुद्र उस (तारकासुर) की भेटके योग्य रत्नों की जल के भीतर उत्पत्ति तक बड़े यत्न से कब तैयार होंगे यह बाट देखता है ॥

३८—देदीप्यमान मणियों की ज्वालावाले वासुकी आदिक सर्प रात्रि में नहीं बुझनेवाले दीपकपने को प्राप्तहोकर इस (तारकासुर) की सेवा करते हैं ॥

३९—इन्द्र भी उस (तारकासुर) से की हुई कृपा की अपेक्षा करताहुआ वारंवार दूतों से प्राप्त कियेगये कल्पवृक्ष के पुष्पों के विभूषणों से उस (तारकासुर) को प्रसन्न करता है ॥

४०—इस प्रकार से आराधना कियेजानेपर भी तीनों भुवनों को क्लेश देता है दुर्ज्जन प्रतीकार (बदले) से शान्त होता है और उपकार से नहीं शान्त होता (उलटा क्रोधित होता है ॥

४१—उस (तारकासुर) ने देवतालोगों की स्त्रियों के हाथों से दयापूर्वक तोड़ेगये नन्दनबन के पुष्प छेदन और पातन के जाननेवाले किये ॥

४२–वीज्यते स हि संसुप्तः श्वाससाधारणानिलैः।
चामरैः सुरबन्दीनां बाष्पशीकरवर्षिभिः॥

४३–उत्पाट्य मेरुशृंगाणि क्षुण्णानि हरितां खुरैः।
आक्रीडपर्वतास्तेन कल्पिताः स्वेषु वेश्मसु॥

४४–मन्दाकिन्याः पयःशेषं दिग्वारणमदाविलम्।
हेमाम्भोरुहशस्यानां तद्वाप्यो धाम साम्प्रतम्॥

४५–भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते।
खिलीभूते विमानानां तदापातभयात् पथि॥

४६–यज्वभिः सम्भृतं हव्यं विततेष्वध्वरेषु सः।
जातवेदोमुखान्मायी मिषतामाच्छिनत्ति नः॥

४७–उच्चैरुच्चैःश्रवास्तेन हयरत्नमहारि च।
देहबद्धमिवेन्द्रस्य चिरकालार्जितं यशः॥

४८–तस्मिन्नुपायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहतक्रियाः।
वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सान्निपातिके॥

४२—वह (तारकासुर) सोताहुआ श्वासाके समान पवनवाले आंसुओं की बूंदों के बरसानेवाले चामरों से बन्धनों में पड़ीहुई देवता लोगों की स्त्रियों के द्वारा व्यजन ढुलाया जाता है ॥

४३—उस (तारकासुर) ने सूर्य्य के घोड़ों के खुरों से चूर्णित मेरु के शृंग उखाड़कर अपने घरों में क्रीड़ा के पर्व्वत बनाये हैं ॥

४४—इस समय गंगाजी का दिशाओं के हाथियों के मद से मिलाहुआ केवल जल शेष रहा है सुवर्ण के कमलरूपी धान्यों का स्थान उसकी बावड़ी हैं अर्थात् गंगाजी के सम्पूर्ण कमल उखाड़कर उसने अपनी बावड़ियों में लगा लिये हैं ॥

४५—उस (तारकासुर) के आगमन के डर से विमानों के मार्ग शून्य होजानेपर देवतालोग भवनों के देखने की प्रीति को नहीं अनुभव करते हैं ॥

४६—यज्ञ करनेवाले लोगों से बड़े २ यज्ञों में दियेहुए हव्य को मायावी वह (तारकासुर) हम लोगों के देखनेपर भी अग्नि के मुख से छीन लेता है ॥

४७—उस (तारकासुर) ने उन्नत उच्चैःश्रवा नाम अश्वरत्न को देह को धारण किये बहुत काल से संचित कियेगये इन्द्र के यश के समान हरलिया ॥

४८—इस घातक (तारकासुर) में हमलोगों के सम्पूर्ण उपाय सन्निपात के विकार में वीर्य्यवाली औषधियों के समान निष्फल होते हैं ॥

४९–जयाशा यत्र चास्माकं प्रतिघातोत्थितार्च्चिषा ।
हरिचक्रेण तेनास्य कण्ठे निष्कमिवार्पितम् ॥

५०–तदीयास्तोयदेष्वद्य पुष्करावर्त्तकादिषु ।
अभ्यस्यन्ति तटाघातं निर्जितैरावता गजाः ॥

५१–तदिच्छामो विभो ! स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये ।
कर्म्मबन्धच्छिदं धर्मं भवस्येव मुमुक्षवः ॥

५२–गोप्तारं सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभित् ।
प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्यो वन्दीमिव जयश्रियम् ॥

५३–वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः ।
गर्जितानन्तरां वृष्टिं सौभाग्येन जिगाय सः ॥

५४–सम्पत्स्यते वः कामोऽयं कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम् ।
न त्वस्य सिद्धौ यास्यामि सर्गव्यापारमात्मना ॥

५५–इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेतएवार्हति क्षयम् ।
विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥

४९–और जहां हम लोगों की विजय की आशा थी प्रतिघात से बड़ी दीप्तिवाला वह विष्णु का चक्र इस (तारकासुर) के कण्ठ में उर के भूषण के सदृश मानों अर्पितहुआ ॥

५०–इस समय ऐरावत के जीतनेवाले उस (तारकासुर) के गज पुष्करावर्त्त आदि मेघों में तटाघात (दिवाल में टक्करमारना) का अभ्यास करते हैं ॥

५१–तिस से हे विभो संसार के कर्मबन्धनों के नाश करने वाले धर्म को मुमुक्षू लोगों के समान उस (तारकासुर) के नाश के लिये सेनापति बनाने की इच्छा (हमलोग) करते हैं ॥

५२–देवताओं की सेना के रक्षा करनेवाले जिस (सेनापति) को आगे करके इन्द्र जयश्री को बंदीखाने में पड़ीहुई स्त्री के समान शत्रुओं से लौटार लेंगे ॥

५३–बृहस्पति के वचन समाप्त होनेपर ब्रह्मा जी वचन बोले उस वचन ने गर्जने के पीछे प्रवृत्तहुई वृष्टि को सौभाग्य से जीतलिया ॥

५४–यह आप लोगों का मनोरथ सिद्ध होगा कुछकाल बाट देखो परन्तु इस सेनापति की सिद्धि में मैं आप सृष्टि के व्यापार को नहीं करूंगा ॥

५५–मुझी से प्राप्त उदयवाला यह (तारकासुर) दैत्य मुझ ही से नाश होने को नहीं योग्य है विष का वृक्ष भी बढ़ा-कर आपही काटना अयोग्य है ॥

५६–वृतं तेनेदमेव प्राक् मया चास्मै प्रतिश्रुतम्।
वरेण शमितं लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः॥

५७–संयुगे सांयुगीनं तमुद्यतं प्रसहेत कः।
अंशादृते निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः॥

५८–स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना॥

५९–उमारूपेण ते यूयं संयमस्तिमितं मनः।
शम्भोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लोहवत्॥

६०–उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्वीजमाहितम्।
सा वा शम्भोस्तदीया वा मूर्त्तिर्जलमयी मम॥

६१–तस्यात्मा शितिकण्ठस्य सैनापत्यमुपेत्य वः।
मोक्ष्यते सुरवन्दीनां वेणीर्वीर्यविभूतिभिः॥

६२–इति व्याहृत्य विबुधान् विश्वयोनिस्तिरोदधे।
मनस्याहितकर्त्तव्यास्तेऽपि देवा दिवं ययुः॥

५६–पूर्व्व में उस (तारकासुर) ने यही (देवताओं से अबध्य पन) मांगा था और मैंने इसे (यही) दियाथा लोकों के भस्म करने में समर्थ उस के तप को वरप्रदान से मैंने शान्त किया॥

५७–युद्ध में उद्यत युद्ध में प्रबल उस (तारकासुर) को किसी क्षेत्र में गिरेहुए महादेव जी के वीर्य्य के विना कौन सह सक्ता है॥

५८–वह देवता (शिव जी) तमोगुण से रहित परमात्मा हैं इसी से मैं और विष्णु उनके प्रभाव सम्बंधी ऐश्वर्य्य के प्रमाण को नहीं जानता हूं॥

५९–वह (कार्यार्थी) तुमलोग समाधि से निश्चल शिव जी के मन को पार्वती जी के स्वरूप से चुम्बक पत्थरसे लोहे के समान आकर्षण करने के निमित्त यत्न करो॥

६०–दोनों (शम्भु और मेरे) केगिरेहुए वीर्य्यको वह (पार्वती) शिवजी के वीर्य्य को और उन्हीं (शिव जी) की जलमयी मूर्त्ति मेरे वीर्य्य को सहने को समर्थ है॥

६१–उन शिव जी की आत्मा (पुत्र) आपलोगों के सेनापति भाव को प्राप्तहोकर शूरता के ऐश्वर्य्य से बन्दीखाने में पड़ीहुई देवतालोगों की स्त्रियोंकी वेणियों को खुलावेगा॥

६२–ब्रह्मा जी देवतालोगों से ऐसा कहकर अन्तर्धान होगये वह देवतालोग भी मन में कार्य्य को धारण कियेहुए स्वर्ग को गये॥

६

६३—तत्र निश्चित्य कन्दर्पमगमत् पाकशासनः।
मनसा कार्यसंसिद्धित्वराद्विगुणरंहसा॥

६४—अथ स ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृंगं
रतिवलयपदांके चापमासज्य कण्ठे।
सहचरमधुहस्तन्यस्तचूतांकुरास्त्रः
शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पधन्वा॥

इतिश्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
ब्रह्मसाक्षात्कारोनाम द्वितीयस्सर्गः॥ २॥

६३–इन्द्र ने उस (शिव जी के आकर्षण) में कामदेव को निश्चय करके कार्य्य की सिद्धी की शीघ्रता से द्विगुण वेगवाले मन से (कामदेव) को स्मरण किया ॥

६४–इसके उपरान्त वह पुष्प धनुषवाला (काम) सुन्दरी स्त्रियों की भृकुटी रूप लताके समान कोटिवाले धनुष को रति के कंकणों के स्थान के चिह्नवाले कण्ठ में डालकर मित्र वसंत के हाथ में धराहुआ आम्र का पुष्पही है अस्त्र जिसका (ऐसा) हाथजोड़कर इन्द्र को प्राप्तहुआ ॥

इतिश्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये भाषानुवादे ब्रह्माभिगमनो नाम द्वितीयस्सर्गः ॥२॥

कुमारसम्भवे

तृतीयस्सर्गः ॥

१ – तस्मिन् मघोनस्त्रिदशान् विहाय
सहस्रमक्ष्णां युगपत् पपात ।
प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां
प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥

२ – स वासवेनासनसन्निकृष्ट-
मितोनिषीदेति विसृष्टभूमिः ।
भर्त्तुः प्रसादं प्रतिनन्द्य मूर्द्ध्ना
वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम् ॥

३ – आज्ञापय ज्ञातविशेष ! पुंसां
लोकेषु यत् ते करणीयमस्ति ।
अनुग्रहं संस्मरणप्रवृत्त-
मिच्छामि संवर्द्धितमाज्ञया ते ॥

४ – केनाभ्यसूया पदकांक्षिणा ते
नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभिः ।
यावद्भवत्याहितसायकस्य
मत्कार्म्मुकस्यास्य निदेशवर्ती ॥

कुमारसम्भवे

मदनदहनोनाम तृतीयस्सर्गः ॥

१ – इन्द्र के नेत्रों का सहस्र देवता लोगों को छोड़कर उस (कामदेव) में इकट्ठाही गिरा प्रायः स्वामीलोगों का सेवकों में आदर प्रयोजनकी अपेक्षा से चंचल होता है ॥

२ – वह (कामदेव) इन्द्र से सिंहासन के समीप यहां बैठो इसप्रकारसे स्थानको पायकर स्वामी के अनुग्रहको मस्तकसे आनन्दित करके एकान्तमें इस (इन्द्र) से इस प्रकार बोला ॥

३ – हे मनुष्योंके चित्तके जाननेवाले (वह) आज्ञाकीजिये जो लोकों में आपको कर्त्तव्य है स्मरणसे उत्पन्नहुये आपके अनुग्रहको आज्ञासे वृद्धिकोप्राप्त इच्छा करताहूं ॥

४ – आपके राज्यकी कांक्षा करनेवाले किस मनुष्यने बड़ेभारी तपोंसे आपकीईर्ष्या करीहै(उसकोकहो) (किसनिमित्त) कि जिस्से वह (आपकाशत्रु)बाणसेयुक्त इसमेरे धनुषकी आज्ञाके वशहो ॥

५ – असम्मतः कस्तव मुक्तिमार्गं
पुनर्भवक्लेशभयात् प्रपन्नः।
बद्धश्चिरं तिष्ठतु सुन्दरीणा-
मारेचितभ्रू चतुरैः कटाक्षैः॥

६ – अध्यापितस्योशनसापि नीतिं
प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते।
कस्यार्थधर्म्मौ वद पीडयामि
सिन्धोस्तटावोघ इव प्रवृद्धः॥

७ – कामेकपत्नीव्रतदुःखशीलां
लोलं मनश्चारुतया प्रविष्टाम्।
नितम्बिनीमिच्छसि मुक्तलज्जां
कण्ठे स्वयंग्राहनिषक्तबाहुम्॥

८ – कयासि कामिन्! सुरतापराधात्
पादानतः कोपनयावधूतः।
तस्याः करिष्यामि दृढानुतापं
प्रवालशय्याशरणं शरीरम्॥

९ – प्रसीद विश्राम्यतु वीर! वज्रं
शरैर्मदीयैः कथमः? सुरारिः।
बिभेतु मोघीकृतबाहुवीर्य्यः
स्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताधराभ्यः॥

१० – तव प्रसादात् कुसुमायुधोऽपि
सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा।
कुर्य्यां हरस्यापि पिनाकपाणे-
र्धैर्य्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये॥

५ – आपके असम्मत कौन संसारके क्लेशोंकेभयसे मुक्त मार्ग को प्राप्त है (उसको बताओ) जिस्से वहभी आरेचित (भृकुटी के एकप्रकारका हिलाना) भृकुटियोंसे चतुर स्त्रियों के कटाक्षोंसे बँधाहुआ बहुत कालतक पड़ारहे ॥

६ – शुक्रजीसे नीतिशास्त्र पढ़ायेगयेभी किस आपके शत्रुकेअर्थ और धर्मको प्रेमहीको दूतबनाकर भेजनेवाला मैं नदीके तटोंको बढ़ेहुये प्रवाहकी समान पीड़ितकरूं(बताओ) ॥

७ – पतिव्रताओं के व्रतसे दृढ़ नियमवाली सुन्दरतासे चंचल मनमें प्रवेश कररही किस नितम्बिनी(स्त्री)को लज्जाकी त्याग करनेवाली कण्ठमें आपही ग्रहणकरके भुजाओंकी छोड़नेवाली चाहतेहो ॥

८ – हे कामिन् सुरतके अपराधसे प्रणतहोनेपर क्रोधवाली किस स्त्रीसे तिरस्कार कियेगयेहो उस स्त्रीका शरीर बड़े पश्चात्तापवाला कोमल पत्तोंकी शय्याकी शरणवाला करूंगा ॥

९ – हे वीर प्रसन्नहो वज्रठहरजाय मेरेबाणोंसे विफल भुजाओं की शक्तिवाला कौन देवताओंका शत्रु कोपसे फड़करहे ओठवाली स्त्रियोंसेभी डरे ॥

१०–आपके प्रसादसे पुष्पधन्वाभी मैं अकेले वसन्तहीको सहायकपाकर पिनाकपाणिवाले शिवजीकेभी धैर्यकी हानि करसक्ताहूं और धनुषधारियोंकी मेरेआगे कौन गणनाहै ॥

११–अथोरुदेशादवतार्यपाद-
माक्रान्तिसम्भावितपादपीठम् ।
सङ्कल्पितार्थे विवृतात्मशक्ति-
माखण्डलः काममिदं बभाषे ॥

१२–सर्वं सखे ! त्वय्युपपन्नमेत-
दुभे ममास्त्रे कुलिशं भवांश्च ।
वज्रं तपोवीर्य्य महत्सुकुण्ठं
त्वं सर्वतोगामि च साधकश्च ॥

१३–अवैमि ते सारमतः खलु त्वां
कार्य्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य
कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥

१४–आशंसता वाणगतिं वृषाङ्के
कार्य्यं त्वया नः प्रतिपन्नकल्पम् ।
निबोध यज्ञांशभुजामिदानी-
मुच्चैर्द्विषामीप्सितमेतदेव ॥

१५–अमी हि वीर्य्यप्रभवं भवस्य
जयाय सेनान्यमुशन्ति देवाः ।
स च त्वदेकेषुनिपातसाध्यो
ब्रह्मांगभूर्ब्रह्मणि योजितात्मा ॥

१६–तस्मै हिमाद्रेः प्रयतां तनूजां
यतात्मने रोचयितुं यतस्व ।
योषित्सु तद्वीर्य्यनिषेकभूमिः
सैव क्षमेत्यात्मभुवोपदिष्टम् ॥

११–इसके उपरान्त इन्द्र पैरके चलानेसे पादपीठके प्रति-बिम्बित होनेपर जंघासे पैरको उतारकर चित्तसे विचारे हुए विषयमें अपनीशक्तिके प्रकट करनेवाले कामदेवसे यह बोले ॥

१२–हे मित्र यह सम्पूर्णबातें तुममें सिद्धहैं मेरेवज्र और आप दो अस्त्रहैं उनमें वज्र तपकेवीर्य्यसे प्रबलोंमें कुण्ठित है और आप सर्वत्र जानेवाले और साधक हैं ॥

१३–हे मित्र तुम्हारे बलको जानताहूं इससे अपने सदृश तुमको अपने बड़ेकार्य्य में नियोजित करूंगा पृथ्वी के धारणपनेको देखकर विष्णुसे शरीर धारण करनेकेलिये शेषजी आज्ञा दिये जाते हैं ॥

१४–शिवजीमें बाणकी गतिको कहनेवाले तुमसे हमारा कार्य अंगीकृतकेही समान है इससमय बड़े शत्रुवाले देवता लोगोंका ईप्सित यही समझो ॥

१५–जिस्से यह (देवता) जयके निमित्त शिवजीके वीर्य्य से उत्पन्नहुये सेनापतिको चाहते हैं मन्त्रोंके न्यासपूर्वक ब्रह्मको ध्यानकररहे वह (शिवजी) एक तुम्हारेही बाणके निपात (लगने) से साध्यहैं ॥

१६–चित्तके रोकनेवाले उन (शिवजी) को पवित्र हिमालय की कन्याकी रुचि करानेकेलिये यत्नकरो स्त्रियोंमेंसमर्थ उन (शिवजी) के गिरेहुये वीर्य्यकीभूमि उस(पार्वतीही) को ब्रह्माने कहाहै ॥

१७—गुरोर्नियोगाच्च नगेन्द्रकन्या
स्थाणुं तपस्यन्तमधित्यकायाम्।
अन्वास्त इत्यप्सरसां मुखेभ्यः
श्रुतं मया मत्प्रणिधिः स वर्गः॥

१८—तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्य्य-
मर्थोऽयमर्थान्तरभाव्यएव।
अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वां
बीजांकुरः प्रागुदयादिवाम्भः॥

१९—तस्मिन् सुराणां विजयाभ्युपाये
तवैव नामास्त्रगतिः कृतो त्वम्।
अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसा-
मनन्यसाधारणमेव कर्म्म॥

२०—सुराः समभ्यर्थयितार एते
कार्य्यं त्रयाणामपि विष्टपानाम्।
चापेन ते कर्म नचातिहिंस्र-
महो वतासि स्पृहणीयवीर्यः॥

२१—मधुश्च ते मन्मथ! साहचर्य्या-
दसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदयिता भवेति
व्यादिश्यते केन हुताशनस्य॥

२२—तथेति शेषामिव भर्त्तुराज्ञा-
मादाय मूर्ध्नामदनः प्रतस्थे।
ऐरावतास्फालनकर्कशेन
हस्तेन पस्पर्श तदंगमिन्द्रः॥

१७—और नगेन्द्रकीकन्या पिताकीआज्ञासे पर्वतके ऊपर की पृथ्वी में तपकररहे शिवजीकी उपासना करती है यह मैंने अप्सराओंके मुखसे सुनाहै वह (अप्सराओंका समूह) मेरा छिपाहुआ दूतहै ॥

१८—तिससे कार्य्यकी सिद्धिकेलियेजाओ देवतालोगोंके कार्य्य को करो यह प्रयोजन औरही प्रयोजनसे साध्यहै उत्पत्ति के प्रथम जलको बीजांकुरके समान उत्तम कारणरूप तुम्हारी बाट देखता है ॥

१९—देवताओंके जयके उपायरूप इन (शिवजी) में तुम्हारेही अस्त्रकी गति है इसीसे तुम कृतार्थहो अवश्य अप्रसिद्धि भी औरोंके करनेके योग्यनहीं कर्म मनुष्योंके यशकेलिये होताहै(यह तो प्रसिद्ध और अन्य पुरुषोंसे करनेके अयोग्य है इसीसे बड़ेयशका करनेवालाहै) ॥

२०—यह देवतालोग मांगनेवाले हैं कार्य्य तीनोंभुवनोंकाभी है और तुम्हारे धनुषसे अतिघातक कर्म नहीं होता अरे आश्चर्यकारी बलवाले हो ॥

२१—हे मन्मथ यह वसन्तभी तुम्हारा मित्रतासे विनाकहेभी सहायकहै वैसेही वायु अग्निका प्रेरकहो यह कौन आज्ञा देता है ॥

२२—ऐसाही हो इस स्वामीके प्रसादसे दीहुई मालाकेसमान आज्ञाको शिरसे ग्रहणकरके कामने प्रस्थानकिया इन्द्रने ऐरावतके उत्साह बढ़ानेकेलिये ताड़न करनेसे कर्कश हाथसे उसके शरीरको स्पर्शकिया ॥

२३–स माधवेनाभिमतेन सख्या
रत्या च साशङ्कमनुप्रयातः।
अंगव्ययप्रार्थितकार्य्यसिद्धिः
स्थाण्वाश्रमं हैमवतं जगाम ॥
२४–तस्मिन् वने संयमिनां मुनीनां
तपः समाधेः प्रतिकूलवर्त्ती।
सङ्कल्पयोनेरभिमानभूत-
मात्मानमाधाय मधुर्जजृम्भे ॥
२५–कुवेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ
गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलंघ्य।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन
व्यलीकनिश्वासमिवोत्ससर्ज ॥
२६–असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः
स्कन्धात् प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां
सम्पर्कमाशिञ्जितनूपुरेण ॥
२७–सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे
नीते समाप्तिं नवचूतवाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्
नामाक्षराणीव मनोभवस्य ॥
२८–वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं
दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥

31/1/02

२३–वह (कामदेव) प्रिय मित्र वसन्त और रति से भय-पूर्वक पीछे गमन कियागया शरीर के व्यय से कार्य्य के सिद्ध की प्रार्थना करनेवाला हिमवान् पर्व्वतपर शिव जी के आश्रम को गया ॥

२४–उस बन में समाधिवाले मुनियों के तप की समाधि का विरोधी वसन्त कामदेव के अभिमान रूप अपने आत्मा को धारण करके प्रकट हुआ ॥

२५–सूर्य्य के समय छोड़के उत्तर दिशा में जाने को प्रवृत्त होनेपर दक्षिण दिशा ने मुख से वायु को दुःख के श्वास के समान छोड़ा ॥

२६–अशोक वृक्ष ने अपने गुद्दे से आरम्भ करके पल्लवों के सहित पुष्प उत्पन्न किये बजते हुए नूपुरवाले[1] स्त्रियों के चरण से ताड़न की अपेक्षा नहीं की ॥

२७–बसन्त ऋतु ने पल्लवों के अंकुरही हैं चारु पत्र जिस में ऐसे नवीन आम के पुष्परूपी बाण के तैयार होनेपर शीघ्र कामके नामाक्षरों के समान भ्रमरों को निवेशित किया (रक्खा) ॥

२८–कनेरके वृक्षने वर्णकी उत्तमता होनेपरभी निर्गन्धता से अपने चित्तको दुःखिताकिया बहुधा ब्रह्माकी प्रवृत्ति गुणोंके संपूर्ण बनानेके विषयमें विमुख है ॥

---

१ नूपुर समेत स्त्री क चरणघात से अशोक वृक्ष फूलता है यह ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है ॥

२९–बालेन्दुवक्राण्यविकाशभावा
द्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।
सद्योवसन्तेन समागतानां
नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥

३०–लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं
मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य ।
रागेण बालारुणकोमलेन
चूतप्रवालोष्ठमलञ्चकार ॥

३१–मृगाः प्रियालद्रुममञ्जरीणां
रजःकणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः ।
मदोद्धताः प्रत्यनिलं विचेरु-
र्वनस्थलीर्मर्मरपत्रमोक्षाः ॥

३२–चूतांकुरास्वादकषायकण्ठः
पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।
मनस्विनीमानविघातदक्षं
तदेव जातं वचनं स्मरस्य ॥

३३–हिमव्यपायाद्विशदाधराणा-
मापाण्डरीभूतमुखच्छवीनाम् ।
स्वेदोद्गमः किम्पुरुषांगनानां
चक्रे पदं पत्रविशेषकेषु ॥

३४–तपस्विनः स्थाणुवनौकसस्ता-
माकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम् ।
प्रयत्नसंस्तम्भितविक्रियाणां
कथञ्चिदीशा मनसां बभूवुः ॥

२९—न फूलनेसे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान टेढ़े बहुत लाल किंशुकके पुष्प वसन्त (पुरुष) से मिलीहुई बन भूमिरूपी (स्त्री)के नूतन नखक्षतोंके समान शोभित हुए ॥

३०—वसन्तकी शोभाने लगी हैं भ्रमररूपी कज्जलकी रचना जिसमें इससे चित्रवर्ण तिलकको मुखमें प्रकाशितकरके बाल सूर्य्यके समान सुन्दर ललाईसे आमके पत्ररूपी ओष्ठोंको आभूषित किया ॥

३१—प्रियाल (वृक्षविशेष) के वृक्षोंकी मंजरियोंके रजकणों से मन्द दृष्टिवाले मदसे उन्मत्त मृग वायुके सन्मुख मर्मर शब्दवाले पत्रपड़े हैं जिनमें ऐसी बनस्थलियोंमें विचरे ॥

३२—आम्रके अंकुरोंके खानेसे रक्तकण्ठवाले पुंस्कोकिल (पुरुष कोकिल) ने जो मधुरशब्दकिये वही मानवतियोंके मान दूरकरनेमें कामदेव का वचन हुआ ॥

३३—हिमके नाशसे नीरोग ओष्ठवाली पीली मुखकी छविवाली किन्नरोंकी अंगनाओंकी पत्ररचना (अंगोंमें चित्रोंकी रचना) ओंमें स्वेद (पसीने) का उदयहुआ ॥

३४—शिवजी के बनमें रहनेवाले मुनिलोग असमयकी उस वसन्तकी प्रवृत्तिको देखकर बड़ेयत्नसे रुके हैं विकार जिनके ऐसे मनोंके शिक्षक किसी प्रकारसे हुए ॥

३५–तं देशमारोपितपुष्पचापे
रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने।
काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं
द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवव्रुः॥

३६–मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे
पपौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं
मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः॥

३७–ददौ रसात् पङ्कजरेणुगन्धि
गजाय गण्डूषजलं करेणुः।
अर्द्धोपभुक्तेन बिसेन जायां
सम्भावयामास रथांगनामा॥

३८–गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः
किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम्।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि
प्रियामुखं किम्पुरुषश्चुचुम्बे (म्ब) ॥

३९–पर्य्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः
स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापु-
र्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि॥

४०–श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्
हरः प्रसंख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः
समाधिभेदप्रभवो भवन्ति॥

३५–पुष्पोंके धनुषके चढ़ानेवाले रतिकी सहायवाले कामदेव के उस देशमें आनेपर (स्थावर और जंगमोंके) जोड़ोंने उत्कर्षको प्राप्त स्नेहरूपी रससे मिलेहुए (शृंगारके) भावको चेष्टासे प्रकट किया ॥

३६–भ्रमरने पुष्परूपी साधारण पात्रमें अपनीप्रियाके पीछे चलरहे मधुको पिया कृष्णमृगने स्पर्श के सुखसे नेत्रोंके मूंदनेवाली मृगीको शृंग (सींग) से खुजलाया ॥

३७–हथिनीने प्रीतिसे कमलकी रेणुकी सुगन्धिवाला सूंड़का जल हाथीको दिया चक्रवाक (चकवी चकवा) ने आधी खाईहुई कमलकी डण्डी स्त्रीकोदी ॥

३८–किन्नरने पसीने के कणोंसे कुछ बिगड़िहुई पत्रलेखा (अंगोंमें चित्ररचना) वाले पुष्पोंकी मदिरासे भ्रान्त नेत्रोंकी शोभावाले प्रियाके मुखको गतोंके मध्यमें चुम्बन किया ॥

३९–सम्पूर्ण पुष्पोंके गुच्छेरूप स्तनवाली देदीप्यमान मूंगेरूप ओष्ठोंसे मनोहर लतारूपी स्त्रियों से नम्र शाखारूपी भुजाओं से बन्धनोंको वृक्षभी प्राप्तहुए ॥

४०–उस समय श्रीशिवजी अप्सराओं के गानके सुननेपरभी आत्माके विचारमें तत्परहुए (लगे) अवश्य चित्तोंकी शिक्षा करनेवालोंके समाधि छुटाने में कभीभी विघ्न समर्थ नहीं होते ॥

४१–लतागृहद्वारगतोऽथनन्दी
वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः।
मुखार्पितैकांगुलिसंज्ञयैव
मा चापलायेति गणान् व्यनैषीत्॥

४२–निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं
मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात् काननमेव सर्व्वं
चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे॥

४३–दृष्टिप्रतापं परिहृत्य तस्य
कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं
ध्यानास्पदं भूतपतेर्व्विवेश॥

४४–स देवदारुद्रुमवेदिकायां
शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम्।
आसीनमासन्नशरीरपात-
स्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श॥

४५–पर्य्यङ्कबन्धस्थिरपूर्व्वकाय-
मृज्वायतं सन्नमितोभयांसम्।
उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात्
प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये॥

४६–भुजंगमोनद्धजटाकलापं
कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम्।
कण्ठप्रभासंगविशेषनीलां
कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम्॥

४१–इसके उपरान्त लता गृहकेद्वारमें प्राप्त सुवर्ण के दण्डको लियेहुए नन्दीने मुखमें लगाईहुई एक अंगुलीकी संज्ञा से गणोंको चपलता करनेके लिये शिक्षाकी ॥

४२–निष्कम्प (विना कपनेवाला) वृक्षवाला निश्चल भ्रमर वाला मौनपक्षी वाला मृगोंके चलनेसे रहित सम्पूर्णही बन उस (नन्दी) की आज्ञासे चित्र लिखित आरम्भके समान स्थित हुआ ॥

४३–कामदेवने यात्राके समय सन्मुख शुक्रवाले देशके समान उन (शिवजी) के दृष्टिके विषय (दृष्टि पड़नेके स्थान) को छोड़कर किनारेपर आपसमें मिलीहुई कल्पवृक्षों की शाखावाले शिवजीके ध्यानस्थान में प्रवेश किया ॥

४४–आसन्न मृत्युवाले उस (कामदेव) ने व्याघ्रके चर्म से बिछीहुई कल्पवृक्षों की वेदिका में बैठेहुए समाधिनिष्ट शिवजी को देखा ॥

इस पैंतालीस के श्लोकसे ५० श्लोकतक एक अन्वय है अर्थात् कुलक है ॥

४५–वीरासन से स्थिर पूर्व शरीरवाले कोमल और विशाल कुछ झुकेहुए दोनों कन्धेवाले ऊपर हथेलीवाले दोनों हाथोंके रखने से गोदीमें मानों कमल फूले हैं जिसके (ऐसे) स्थित हैं ॥

४६–सर्पसे उठाय के जटाके बांधनेवाले कानमें आसक्त (टँगे हुए) दुहैरी अक्षमालावाले कण्ठकी प्रभाओंके मिलने से विशेष नीलवर्ण बँधेहुए कृष्ण मृगके चर्मको धारण कररहे ॥

४७–किञ्चित्प्रकाशस्तिमितोग्रतारै-
र्भ्रूविक्रियायां विरतप्रसंगैः ।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालै-
र्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः ॥

४८–अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाह-
मपामिवाधारमनुत्तरंगम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधा-
न्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥

४९–कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गै-
र्ज्योतिः प्ररोहैरुदितैः शिरस्तः ।
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां
बालस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तमिन्दोः ॥

५०–मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति
हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम् ।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त-
मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ॥

५१–स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं
पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम् ।
नालक्षयत् साध्वससन्नहस्तः
स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ॥

४७–कुछ प्रकाशवाली निश्चल उग्र पुतलीवाले भृकुटी के चलानेसे रहित नहीं चलायमान पलकोंकी पंक्तिवाले नीचे मुखकी किरणवाले नेत्रोंसे नासिकाको देखरहे ॥

४८–भीतर चलनेवाले पवनों के रोंकनेसे वर्षाकी व्याकुलता से रहित मेघके समान स्थित तरंगोंसे रहित तड़ाग के समान स्थित पवन से रहित स्थानमें निश्चल दीपकके समान स्थित ॥

४९–शिरवाले नेत्रके मध्यसे मार्गको पानेवाले शिरसे उत्पन्न हुए ज्योतिके अंकुरोंसे कमलकी दण्डीके सूत्रसे अधिक सुकुमार बालचन्द्रमा की लक्ष्मीको म्लान कररहे ॥

५०–नवद्वारोंसे निवर्त्तित (बन्दहोगयी) गतिवाले समाधिसे वशहोगये मनको हृदय में स्थापित करके क्षेत्रके जान-नेवाले जिसको अविनाशी कहते हैं उस आत्माको अपने में देखरहे ॥

५१–कामदेवने पूर्व कहेहुए रूपवाले मनसे भी धर्षणा करने के योग्य नहीं शिवजीको निकटसे देखकर भयसे शिथिल हाथ होकर अपने हाथसे गिरेहुए धनुष और बाणको भी न जाना ॥

५२–निर्वाणभूयिष्ठमथास्य वीर्य्यं
सन्धुक्षयन्तीव वपुर्गुणेन ।
अनुप्रयाता वनदेवताभ्या-
मदृश्यत स्थावरराजकन्या ॥

५३–अशोकनिर्भर्त्सितपद्मराग-
माकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं
वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ॥

५४–आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां
वासो वसाना तरुणार्करागम् ।
पर्य्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा
सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव ॥

५५–स्रस्तां नितम्बादवलम्बमाना
पुनः पुनः केशरदामकाञ्चीम् ।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण
मौर्वीं द्वितीयामिव कार्मुकस्य ॥

५६–सुगन्धिनिश्वासविवृद्धतृष्णं
विम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम् ।
प्रतिक्षणं संभ्रमलोलदृष्टि-
र्लीलारविन्देन निवारयन्ती ॥

५२–इसके उपरान्त नष्ट होनेके समान इस (कामदेव) के बलको सौन्दर्य्यसे मानों जिवायरही वनदेवताओं से पीछे गमनकी गई पर्व्वतों के राजा की कन्या (पार्वती) दिखाई पड़ी ॥

अब आगे के चार श्लोकों में श्रीपार्वतीजी का वर्णन है ॥

५३–अशोकके पुष्प से पद्मराग मणि के तिरस्कार करनेवाले सुवर्णकी कान्ति के आकर्षण करनेवाले कनेरके पुष्प हैं (जिसमें) मोतियोंके समूहके समान निर्गुएडी (मुंडी) के पुष्प वाले वसन्तके पुष्पोंहींको आभरण धारणकररही ॥

५४–स्तनों से कुछ नम्र शरीर वाली बाल सूर्य्य के समान रक्त वस्त्रों को ओढ़रही सम्पूर्ण पुष्पोंके गुच्छों से नम्र पत्ते वाली लता के समान स्थित ॥

५५–स्थान के जानने वाले कामदेव से रक्खी गई धनुषकी दूसरी प्रत्यंचा के समान नितम्ब से गिररही बकुल की मालारूप क्षुद्रघण्टिका रूप वारंवार हाथ से पकड़ती हुई ॥

५६–सुगन्धि वाले श्वास से बड़ी तृष्णा वाले कुँदरूके समान ओष्ठों के पास घूमते हुए भ्रमरको क्षण २ पर सम्भ्रम से चञ्चल दृष्टिवाली होकर क्रीड़ा के कमल से निवारण कररही ॥

५७–तां वीक्ष्य सर्व्वावयवानवद्यां
रतेरपि ह्रीपदमादधानाम्।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः
स्वकार्य्यसिद्धिं पुनराशशंसे (स)

५८–भविष्यतः पत्युरुमा च शम्भोः
समाससाद प्रतिहारभूमिम्।
योगात् स चान्तः परमात्मसंज्ञं
दृष्ट्वा परं ज्योतिरुपारराम॥

५९–ततोभुजंगाधिपतेः फणाग्रै-
रधः कथञ्चिद्धृतभूमिभागः।
शनैःकृतप्राणविमुक्तिरीशः
पर्य्यङ्कबन्धं निविड़ं बिभेद॥

६०–तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी
शुश्रूषया शैलसुतामुपेताम्।
प्रवेशयामास च भर्त्तुरेनां
भ्रूक्षेपमात्रानुमतप्रवेशाम्॥

६१–तस्याः सखीभ्यां प्रणिपातपूर्वं
स्वहस्तलूनः शिशिरात्ययस्य।
व्यकीर्य्यत त्र्यम्बकपादमूले
पुष्पोच्चयः पल्लवभङ्गभिन्नः॥

५७–सम्पूर्ण अंगों में नहीं निन्दा करने के योग्य रति के भी लज्जा के निमित्त को पुष्टि करती हुई उस (पार्वती) को देखकर कामदेवने जितेन्द्रिय शिवजी में अपने कार्य्य के सिद्धकी फिर इच्छा की ॥

५८–और पार्वती पति होनेवाले शिवजी के द्वारदेश (द्वार पर) प्राप्तहुई और वह (शिवजी) अन्तःकरणमें परमात्मा नाम मुख्य तेज को देखकर ध्यान से निवृत्तहुए ॥

५९–इसके उपरान्त शेषजी के फणों से नीचे बड़े यत्नसे धारण किया गया है अपने बैठनेकी पृथ्वी का भाग जिनका (ऐसे) धीरे २ प्राणों के छोड़ने वाले शिवजीने दृढ़ वीरासन को शिथिल किया ॥

६०–इसके उपरान्त इन (शिवजी) को प्रणाम करके सेवा करने को प्राप्त पार्वती को निवेदन किया (पार्वती जी आई हैं ऐसा कहा) स्वामीकी भृकुटी चलाने की संज्ञा (सूचना) से अंगीकृत (स्वीकार कियागया) है प्रवेश जिसका ऐसी पार्वती को प्रवेश कराया ॥

६१–उस (पार्वती) की सखियों ने अपने हाथ से तोड़ाहुआ पत्तों के टुकड़ों से मिला हुआ वसन्तसम्बन्धी पुष्पों का समूह शिवजी के चरणों में नमस्कारपूर्वक छोड़ा ॥

६२—उमापि नीलालकमध्यशोभि
विस्रंसयन्ती नवकर्णिकारम् ।
चकार कर्णच्युतपल्लवेन
मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय ॥

६३—अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति
सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन ।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्
पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥

६४—कामस्तु वाणावसरं प्रतीक्ष्य
पतंगवद्वह्निमुखं विविक्षुः ।
उमासमक्षं हरवद्धलक्ष्यः
शरासनज्यां मुहुराममर्श ॥

६५—अथोपनिन्ये गिरिशाय गौरी
तपस्विने ताम्ररुचा करेण ।
विशोषितां भानुमतो मयूखै-
र्म्मन्दाकिनीपुष्करबीजमालाम् ॥

६६—प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्
त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
सम्मोहनं नाम च पुष्पधन्वा
धनुष्यमोघं समधत्त वाणम् ॥

६७—हरस्तु किञ्चित् परिलुप्तधैर्य-
श्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे
व्यापारयामास विलोचनानि ॥

६२—पार्वती ने भी नीले केशोंके मध्यमें शोभित नवीन कनेर के फूलको गिरा रही कान से गिरे हुए पत्ते वाले शिरसे शिवजी को प्रणाम किया ॥

६३—वह (पार्वती) शिवजी से और स्त्रियों के नहीं सेवन करने वाले पतिको प्राप्तहो यह (बात) सत्य कही गई अवश्य महापुरुषों के वचन कभी भी विपरीत अर्थको नहीं बांधन करते हैं ॥

६४—और कामने वाणके अवसरको जानकर पतंग के समान अग्नि के मुख में प्रवेश करने की इच्छा कररहा पार्वती जी के सन्मुख शिवजी में लक्ष्य बाँधकर धनुषकी प्रत्यंचा फिर खेंची ॥

६५—इसके उपरान्त पार्वती जी ने तपस्वी शिवजी को ताम्र के समान कान्ति वाले हाथसे सूर्य्यकी किरणों से सुखी हुई गंगाजी के कमलों के बीजों की माला अर्पणकी ॥

६६—और शिवजी ने अर्थी प्रियपने से उस (माला) के ग्रहण करने को प्रारम्भ किया और कामने सम्मोहन नाम अमोघ वाणको धनुष में चढ़ाया ॥

६७—शिवने भी चन्द्रोदय के आरम्भ में समुद्र के समान कुछ लुप्त धैर्य्य वाले होकर कुँदरू के समान ओष्ठ वाले पार्वती जी के मुख में नेत्रों को लगाया ॥

६८—विवृण्वती शैलसुतापि भाव-
मंगैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ
मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥

६९—अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः
पुनर्वशित्वाद्बलवन्निगृह्य।
हेतुं स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षु-
र्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम् ॥

७०—स दक्षिणापांगनिविष्टमुष्टिं
नतांसमाकुञ्चितसव्यपादम्।
ददर्श चक्रीकृतचारुचापं
प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥

७१—तपः परामर्शविवृद्धमन्यो-
र्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीया-
दक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात ॥

७२—क्रोधं प्रभो! संहर संहरेति
यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा
भस्मावशेषं मदनं चकार ॥

७३—तीव्राभिषंगप्रभवेण वृत्तिं
मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं
कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥

६८–पार्वती भी देदीप्यमान कोमल कदम्ब के सदृश अंगों से भाव को प्रकाश कररही अति सुन्दर क्रीड़ा से भ्रान्त नेत्रवाले मुखको तिरछा करके स्थित हुई ॥

६९–इसके उपरान्त शिवजी ने जितेन्द्रियपने से इन्द्रिय के विकार को फिर दृढ़ता से रोककर अपने चित्तके विकार के कारण को देखने की इच्छा करते हुए दिशाओं के बीचमें दृष्टि दी ॥

७०–उन (शिवजी) ने दक्षिण नेत्रके कोये में स्थित मुष्टि वाले झुके कन्धे वाले सुकड़े हुए दक्षिण चरणवाले चक्र के समान धनुषके करने वाले प्रहार करने को उद्यत कामदेव को देखा ॥

७१–तपके परम (आक्रमण अर्थात् दबाने से) बढ़े हुए कोपवाले भृकुटी के भंगसे नहीं देखने के योग्य मुखवाले उन (शिवजी) के तीसरे नेत्रसे प्रकाशमान उठी हुई ज्वालावाली अग्नि निकली ॥

७२–हे प्रभो क्रोधको निवृत्त करो निवृत्तकरो ऐसी देवताओं की वाणी जबतक आकाशमें प्रवृत्तहोंय तभीतक शिवजी के नेत्रसे उत्पन्न हुई उस अग्निने भस्म है शेष जिसका ऐसा कामदेव को किया (अर्थात् भस्म कर दिया) ॥

७३–बड़े अनादरसे उत्पन्न हुए इन्द्रियों के व्यापार के रोकने वाले मोहसे रति मुहूर्त्तभर पतिके नाशको न जानकर मानों उपकार की गई (अर्थात् उसको मूर्च्छा आगई) ॥

७४–तमाशु विघ्नं तपसस्तपस्वी
वनस्पतिं वज्रइवावभज्य।
स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्तुमिच्छ-
न्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः॥

७५–शैलात्मजापि पितुरुच्छिरसोऽभिलाषं
व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च।
सख्योः समक्षमिति चाधिकजातलज्जा
शून्या जगाम भवनाभिमुखी कथञ्चित्॥

७६–सपदि मुकुलिताक्षीं रुद्रसंरम्भभीत्या
दुहितरमनुकम्प्यामद्रिरादाय दोर्भ्याम्।
सुरगजइव बिभ्रत् पद्मिनीं दन्तलग्नां
प्रतिपथगतिरासीत् वेगदीर्घीकृतांगः॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
मदनदहनो नाम तृतीयस्सर्गः॥ ३॥

७४–तपस्वी शिवजी तपके विघ्नरूप उस(कामदेव) को वृक्षको वज्र केसमान नाशकरके स्त्रीके समीपको छोड़नेकी इच्छा करते हुए गणों समेत अन्तर्धान हुए ॥

७५–पार्वतीभी उन्नत शिरवाले पिताके अभिलाषको और अपने सुन्दर शरीरको व्यर्थ समझकर सखियोंके सन्मुख इस हेतु से अधिक लज्जावाली निरुत्साह होकर कष्टसे भवन के सन्मुख गई ॥

७६–शीघ्र हिमवान् शिवजीके कोपके भयसे नेत्रोंकी मूंदने वाली कृपा करनेकेयोग्य कन्याको हाथोंसे लेकर दांतों में लगीहुई कमलनीको धारण कररहे ऐरावतके समान वेगसे शरीरको बडाकरके मार्गानुसार गतिवाला हुआ (अर्थात् गमन करता हुआ) ॥

इतिश्रीकालिदासकृतौकुमारसम्भवेमहाकाव्येभाषानुवादेमदनदहनोनामतृतीयस्सर्गः ॥ ३ ॥

कुमारसंभवे

चतुर्थस्सर्गः ॥

१ – अथ मोहपरायणा सती
विवशा कामवधूर्विबोधिता ।
विधिना प्रतिपादयिष्यता
नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥

२ – अवधानपरे चकार सा
प्रलयान्तोन्मिषिते विलोचने ।
न विवेद तयोरतृप्तयोः
प्रियमत्यन्तविलुप्तदर्शनम् ॥

३ – अयि जीवितनाथ! जीवसी -
त्यभिधायोत्थितया तयापुरः ।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ
हरकोपानलभस्म केवलम् ॥

४ – अथ सा पुनरेव विह्वला
वसुधालिंगनधूसरस्तनी ।
विललाप विकीर्णमूर्धजा
समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम् ॥

५ – उपमानमभूद्विलासिनां
करणं यत्तव कान्तिमत्तया ।
तदिदं गतमीदृशीं दशां
न विदीर्य्ये कठिनाः खलु स्त्रियः ॥

कुमारसंभवे

रतिविलापोनामचतुर्थस्सर्गः ॥

१ – इसके अनन्तर मोह है एकशरण (रक्षा करनेवाला) जिसका ऐसीहोकर चेष्टारहित रति असह्य वेदनावाले नवीन वैधव्य (विधवापन) को प्रतिपादन (अनुभव) करानेवाले दैवसे जगाईगई ॥

२ – उस (रतिने) मूर्च्छाके अन्तमें खुलेहुए नेत्रोंको देखनेकी इच्छाहै प्रधान जिनको (ऐसा) किया उन नेत्रोंको अत्यन्त नष्टहोगयाहै दर्शन जिसका ऐसे (अपने) प्रिय कामदेवको न जाना ॥

३ – हेप्राणनाथ जीतेहो यहकहकर उठीहुई उसरतिने सन्मुख पृथ्वीमें पुरुषकी आकृतिके समान आकृति है जिसकी (ऐसी) केवल शिवजीके कोपाग्निकी भस्मको देखा ॥

४ – इसके अनन्तर फिर भी विह्वल पृथ्वी में लोटनेसे मटियारे स्तनवाली बिखरेहुये केशवाली उस (रति) ने बन की पृथ्वी को अपने समान शोकवाली मानों करती हुईने विलाप किया ॥

५ – तुम्हारा जो गात्र सौन्दर्य्य से विलासियों का उपमान था वह (गात्र) ऐसी दशाको प्राप्तहै तिसपर भी मैं नहीं विदीर्ण होतीहूं अवश्य स्त्री कठोर होती हैं ॥

६ – क्व नु मां त्वदधीनजीवितां
विनिकीर्य्य क्षणभिन्नसौहृदः ।
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो
जलसंघात इवासि विद्रुतः ॥

७ – कृतवानसि विप्रियं न मे
प्रतिकूलं न च ते मया कृतम् ।
किमकारणमेव दर्शनं
विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥

८ – स्मरसि स्मर ! मेखलागुणै-
रुत गोत्रस्खलितेषु बन्धनम् ।
च्युतकेशरदूषितेक्षणा-
न्यवतंसोत्पलताडनानि वा ॥

९ – हृदये वससीति मत्प्रियं
यदवोचस्तदवैमि कैतवम् ।
उपचारपदं न चेदिदं
त्वमनंगः कथमक्षता रतिः ॥

१०—परलोकनवप्रवासिनः
प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव ।
विधिना जन एष वञ्चित-
स्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम् ॥

६ – हे प्रिय कमलनी को टूटगया है सेतुबन्धन जिसका ऐसे जल के समूह के समान तुम्हारे आधीन जीवनवाली मुझको कहां छोड़कर क्षणभर प्रेमको त्याग करके चले गये ॥

७ – हे प्रिय तुमने मेरा अप्रिय नहीं किया और मैंने तुम्हारा अप्रिय नहीं किया कारण के विनाही विलाप कररही रतिको क्यों नहीं दर्शन देतेहो ॥

८ – हे कामदेव नामके बदलजानेमें क्षुद्रघंटिकाओंकी डोरियोंसे बन्धनको स्मरण करतेहो अथवा गिरिहुई रजसे पीड़ित हैं नेत्र जिसमें ऐसे शिरोभूषणके कमल के ताड़नको स्मरण करतेहो ॥

९ – तू मेरे हृदयमें रहती है यह जो मेरा प्रिय कहते थे उसे मैं छल मानतीहूं यह (वचन) उपचारपद (दूसरे के प्रसन्न करने को जो असत्य भाषण है उसे उपचार कहतेहैं उसका पद अर्थात् स्थान) नहीं है (तो) तुम शरीर रहितहो क्यों रति नष्ट नहीं हुई ॥

१०–परलोकके प्रति अभी जानेवाले आपके मार्गको मैं प्राप्त होंगी परन्तु ब्रह्मा से यह संसार बंचितहुआ (ठगागया) क्योंकि देहियों का सुख आपके आधीन है ॥

११—रजनीतिमिरावगुण्ठिते
पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः।
वसतिं प्रिय! कामिनां प्रिया-
स्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः॥

१२—नयनान्यरुणानि घूर्णयन्
वचनानि स्खलयन् पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमदः
प्रमदानामधुना विडम्बना॥

१३—अवगम्य कथीकृतं वपुः
प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदयः।
बहुलेऽपि गते निशाकर-
स्तनुतां दुःखमनंग! मोक्ष्यति॥

१४—हरितारुणचारुबन्धनः
कलपुंस्कोकिलशब्दसूचितः।
वद सम्प्रति कस्य बाणतां
नवचूतप्रसवो गमिष्यति॥

१५—अलिपंक्तिरनेकशस्त्वया
गुणकृत्ये धनुषोनियोजिता।
विरुतैः करुणस्वनैरियं
गुरुशोकामनुरोदितीव माम्॥

१६—प्रतिपद्य मनोहरं वपुः
पुनरप्यादिश तावदुत्थितः।
रतिदूतिपदेषु कोकिलां
मधुरालापनिसर्गपण्डिताम्॥

११—हे प्रिय रात्रिके अन्धकार से छायेहुए पुरके मार्गमें गर्जनेसे डरीहुई स्त्रियोंको कामियोंके स्थानोंको प्राप्त कराने के लिये तुम्हारे विना कौन समर्थ है ॥

१२—लाल नेत्रोंको घुमाताहुआ पद २ पर वचनोंको लौट पौट करताहुआ स्त्रियोंको मद्यका मद इससमय तुम्हारे विना विडम्बना (अनुकरण) है ॥

१३—हे अनंग प्रिय मित्र तुम्हारे शरीरको कथनमात्रके लिये ही शेष जानकर निष्फल उदयवाला चन्द्रमा कृष्णपक्ष के व्यतीत होने पर भी दुर्बलताको दुःखसे छोड़ेगा ॥

१४—हरित और रक्त बन्धनवाला मधुर पुरुष कोकिल के शब्दसे सूचित नवीन आम्रका पुष्प इससमय किसका वाण बनेगा बताओ ॥

१५—तुमसे अनेकवार धनुष की प्रत्यंचा बनाने में नियुक्त (लगाईगई) यह भ्रमरों की पंक्ति दीन शब्दवाले कूजित (गुंजार) से बड़े शोकवाली मेरे पीछे मानों रोदन करती है ॥

१६—तो फिर भी मनोहर शरीरको प्राप्तहोकर उठके प्रियवचनों में स्वभाव से पण्डित कोकिला को सुरतिकी दूतियोंके स्थान में आज्ञादो ॥

१७–शिरसा प्रणिपत्य याचिता-
न्युपगूढानि सवेपथूनि च।
सुरतानि च तानि ते रहः
स्मर! संस्मृत्य न शान्तिरस्ति मे॥

१८–रचितं रतिपण्डित! त्वया
स्वयमंगेषु ममेदमार्त्तवम्।
ध्रियते कुसुमप्रसाधनं
तव तच्चारु वपुर्न दृश्यते॥

१९–विबुधैरसि यस्य दारुणै-
रसमाप्ते परिकर्मणि स्मृतः।
तमिमं कुरु दक्षिणेतरं
चरणं निर्मितरागमेहि मे॥

२०–अहमेत्य पतंगवर्त्मना
पुनरङ्काश्रयणी भवामि ते।
चतुरैः सुरकामिनीजनैः
प्रिय! यावन्न विलोभ्यसे दिवि॥

२१–मदनेन विनाकृता रतिः
क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं
रमण! त्वामनुयामि यद्यपि॥

२२–क्रियतां कथमन्त्यमण्डनं
परलोकान्तरितस्य ते मया।
सममेव गतोऽस्यतर्कितां
गतिमंगेन च जीवितेन च॥

१७–हे कामदेव शिरसे प्रणाम करके मांगेहुए कंपन के साथ तुम्हारे आलिंगनोंको और उन एकान्त में सुरतों को स्मरणकरके मुझे शान्ति नहीं होती है ॥

१८–हे रतिमें पण्डित तुमसे मेरे अंगोंमें स्वयं बनायाहुआ वसन्त सम्बन्धी पुष्पों का यह आभरण तो वर्त्तमान है (परन्तु) तुम्हारा वह सुन्दर शरीर नहीं दिखाई देताहै॥

१९–क्रूर देवताओं से जिस मेरे चरणके प्रसाधन (महावर देना) के नहीं समाप्त होनेपर स्मरण किये गये थे आओ उस इस मेरे वाम चरणको निर्मितराग (महावरसंयुक्त) करो ॥

२०–मैं अग्नि के मार्ग से आयकर फिर तुम्हारी गोदी की बैठने वाली होती हूं हे प्रिय स्वर्ग में चतुर देवताओं की स्त्रियों से जब तक न लुभाये जाओगे ॥

२१–हे रमण यद्यपि तुम्हारे पीछे गमन करती हूं तथापि रति कामदेव से वियोजित (अलग) होकर क्षणभर जीती रही अवश्य यह निन्दा मेरी स्थिर हुई ॥

२२–परलोक में छिपे हुए आप का अन्त्य मण्डन (भूषित करना) किस प्रकार से करूं क्योंकि शरीर और जीव के साथही अविचारित गति को गये हो ॥

२३–ऋजुतां नयतः स्मरामि ते
शरमुत्संगनिषण्णधन्वनः ।
मधुना सह सस्मितां कथां
नयनोपान्तविलोकितञ्च यत् ॥

२४–क्व नु ते हृदयंगमः सखा
कुसुमायोजितकार्मुको मधुः ।
न खलूग्ररुषा पिनाकिना
गमितः सोऽपि सुहृद्गतां गतिम् ॥

२५–अथ तैः परिदेविताक्षरै-
र्हृदये दिग्धशरैरिवाहतः ।
रतिमभ्युपपत्तुमातुरां
मधुरात्मानमदर्शयत् पुरः ॥

२६–तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं
स्तनसम्बाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो
विवृतद्वारमिवोपजायते ॥

२७–इति चैनमुवाच दुःखिता
सुहृदः पश्य वसन्त ! किं स्थितम् ।
तदिदं कणशो विकीर्य्यते
पवनैर्भस्म कपोतकर्वुरम् ॥

२८–अयि सम्प्रति देहि दर्शनं
स्मर ! पर्य्युत्सुकएष माधवः ।
दयितास्वनवस्थितं नृणां
न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ॥

२३–वाण को कोमलता प्राप्त करनेवाले गोदी में धनुष को रखनेवाले तुम्हारी वसन्त के साथ ईषद्धास्यपूर्वक कथा को और जो अपांग वीक्षण (कोयोंतक फैलीहुई दृष्टि) तिस को स्मरण करती हूं ॥

२४–हृद्य (हृदय का मित्र) तुम्हारा मित्र पुष्पों से धनुष बनानेवाला वसन्त कहां गया अथवा उसे भी बड़े क्रोध वाले शिवजी ने मित्र से प्राप्त हुई दशा को तो नहीं प्राप्त करदिया ॥

२५–इस के उपरान्त उन विलाप के वचनों से हृदय में विष के बुझे हुए वाणों से मानों मारेहुए वसन्तने आपत्ति में पड़ीहुई उस रतिको समझाने के लिये अपने को सन्मुख दिखाया ॥

२६–उस (रति) ने उस (वसन्त) को देखकर बहुत रोदन किया और स्तनों की पीड़ापूर्व्वक छाती पीटी अवश्य निज जनके आगे मानों दुःख के द्वार खुल जाते हैं ॥

२७–दुःखित वह (रति) इस वसन्तसे बोली हे वसन्त देखो मित्र का क्या हुआ वह यह कपोत के समान कर्बुर चित्रित चूर्ण होगया भस्म पवनों से फेंका जाता है ॥

२८–हे कामदेव इस समय दर्शन दो यह वसन्त तुम्हारा दर्शन चाहता है (क्योंकि) पुरुषों का स्त्रियों में प्रेम स्थिर नहीं होता है और मित्रों में स्थिर होता है ॥

२९–अमुना ननु पार्श्ववर्त्तिना
जगदाज्ञां ससुरासुरं तव ।
विसतन्तुगुणस्य कारितं
धनुषः पेलवपुष्पपत्रिणः ॥

३०–गत एव न ते निवर्त्तते
स सखा दीपइवानिलाहतः ।
अहमस्य दशेव पश्य मा-
मविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥

३१–विधिना कृतमर्द्धवैशसं
ननु मां कामबधे विमुञ्चता ।
अनपायिनि संश्रयद्रुमे
गजभग्ने पतनाय वल्लरी ॥

३२–तदिदं क्रियतामनन्तरं
भवता बन्धुजनप्रयोजनम् ।
विधुरां ज्वलनातिसर्ज्जना-
न्ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम् ॥

३३–शशिना सह याति कौमुदी
सह मेघेन तड़ित् प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगाइति
प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥

३४–अमुनैव कषायितस्तनी
सुभगेन प्रियगात्रभस्मना ।
नवपल्लवसंस्तरे यथा
रचयिष्यामि तनुं विभावसौ ॥

२९–हे काम इस सहचर (साथी) वसन्त से देवता और दैत्योंसमेत संसार कमल के सूत्र की प्रत्यंचावाले कोमल पुष्पही हैं वाण जिसके (ऐसे) तुम्हारे धनुष की आज्ञा कराया गया ॥

३०–वह तुम्हारा मित्र वायु से ताड़ित दीपक के समान चलाहगिया निवृत्त नहीं होता (नहीं लौटता) मैं इस की बत्ती के समान स्थित हूं सहनेके अयोग्य दुःख से धूमवाली मुझको देखो ॥

३१–हे वसन्त काम के बध में मुझे छोड़नेवाले ब्रह्मा ने आधा बध किया विघ्नरहित आश्रय वृक्ष के हाथी से टूटनेपर लता गिरनेही को समर्थ होती है ॥

३२–इस कारण से अनन्तर (काम के मरने के पीछे) आप यह मित्र का कृत्य करो हे वसन्त विवश मुझको (मुझ परवश को) अग्नि देने से पति के समीप प्राप्तकराओ (भेजो) ॥

३३–चन्द्रिका चन्द्रमा के साथ जाती है बिजली मेघ के साथ नष्ट होती है स्त्री पति के मार्ग में जानेवाली है यह जड़लोग भी जानते हैं ॥

३४–इसी सुन्दर पति के शरीर की भस्मही से स्तनों को रंजित करके नवीन पत्तों की शय्या के समान अग्नि में शरीर को रखूंगी ॥

३५-कुसुमास्तरणे सहायतां
बहुशः सौम्य ! गतस्त्वमावयोः ।
कुरु सम्प्रति तावदाशु मे
प्रणिपाताञ्जलियाचितश्चिताम् ॥

३६-तदनु ज्वलनं मदर्पितं
त्वरयेर्दक्षिणवातवीजनैः ।
विदितं खलु ते यथा स्मरः
क्षणमप्युत्सहते न मां विना ॥

३७-इति चापि विधाय दीयतां
सलिलस्याञ्जलिरेकएव नौ ।
अविभज्य परत्र तं मया
सहितः पास्यति ते स बान्धवः ॥

३८-परलोकविधौ च माधव !
स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः ।
निवपेः सहकारमञ्जरीः
प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा ॥

३९-इति देहविमुक्तये स्थितां
रतिमाकाशभवा सरस्वती ।
शफरीं हृदशोषविक्लवां
प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पयत् ॥

४०-कुसुमायुधपत्नि ! दुर्लभ-
स्तव भर्ता न चिराद्भविष्यति ।
शृणु येन स कर्मणा गतः
शलभत्वं हरलोचनार्चिषि ॥

३५–हे साधो तुम हम दोनों के बहुतवार पुष्पों के बिछौनोंमें सहायता को प्राप्तहुए हौ इस समय प्रणाम की अंजलि पूर्व्वक प्रार्थना कियेगये शीघ्र मेरेलिये चिता बनाओ ॥

३६–इसके उपरान्त मुझे दीहुई अग्नि को मलयाचल के पवन चलाने से शीघ्र प्रज्वलित करो तुम जानते हो जिस प्रकार कामदेव मेरे विना क्षणभर भी नहीं प्रसन्न होता है ॥

३७–ऐसा करके हम दोनोंको एकही अंजलि दो उस (अंजलि) को वह तुम्हारा मित्र परलोक में मेरे साथ विना विभाग किये पियेगा ॥

३८–किन्तु हे वसन्त पिण्डोदकादि कार्यों में काम के लिये चंचल पत्तेवाली आम्र की मंजरी देना क्योंकि तुम्हारा मित्र (कामदेव) आम के पुष्पों का चाहने वाला है ॥

३९–इसप्रकार से शरीर के त्यागने में स्थित रति को आकाशवाणी ने जलके हृद (तड़ाग) सूखने से व्याकुल मछली को प्रथम वृष्टि के समान अनुकम्पित किया (दयापूर्व्वक बोली) ॥

४०–हे काम की स्त्री तेरा पति बहुत कालतक दुर्लभ न होगा सुन जिस कर्म से वह शिव जी के नेत्र की ज्वाला में पतंगत्व को प्राप्तहुआ (पतंग के समान भस्म होगया) ॥

४१–अभिलाषमुदीरितेन्द्रियः
स्वसुतायामकरोत् प्रजापतिः ।
अथ तेन निगृह्य विक्रिया-
मभिशप्तः फलमेतदन्वभूत् ॥

४२–परिणेष्यति पार्वतीं यदा
तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः ।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं
वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥
४३–इति चाह स धर्मयाचितः
स्मरशापावधिदां सरस्वतीम् ।
अशनेरमृतस्य चोभयो-
र्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः ॥ युग्मकम् ॥
४४–तदिदं परिरक्ष शोभने !
भवितव्यप्रियसंगमं वपुः ।
रविपीतजला तपात्यये
पुनरोघेन हि युज्यते नदी ॥
४५–इत्थं रतेः किमपि भूतमदृश्यरूपं
मन्दीचकार मरणव्यवसायबुद्धिम् ।
तत्प्रत्ययाच्च कुसुमायुधबन्धुरेना-
माश्वासयत् सुचरितार्थपदैर्वचोभिः ॥

४१–प्रेरणा की गई हैं इन्द्रिय जिनकी (ऐसे) ब्रह्माजी ने अपनी कन्या में अभिलाष किया इसके उपरान्त ब्रह्मा जी से इन्द्रिय के विकार को रोककर शाप दियागया इस फल को अनुभव किया॥

आगे के दो श्लोकों का अन्वय एक है॥

४२–धर्म से प्रार्थना कियेगये वह (ब्रह्मा) तप से पार्वती में सन्मुख किये हुए शिवजी जिससमय पार्वती से विवाह करेंगे उससमय आनन्द को प्राप्त होकर कामदेव को अपने शरीर से नियोजित (संयोग) करावेंगे और ऐसी

४३–काम के शापके अवधि की देनेवाली सरस्वती को बोले जितेन्द्रिय और मेघ वज्र और अमृत दोनों के उत्पत्ति स्थान होते हैं॥

४४–हे शोभने तिस कारण से होनेवाला है प्रियका संगम जिस को ऐसे शरीर की रक्षा करो सूर्य्य से पीतजल वाली शुष्क हुई नदी वर्षा में फिर प्रवाह से मिलती है॥

४५–इसप्रकार से अदृश्य रूप किसी प्राणी ने रति की मरण के उद्योगकी बुद्धि निवृत्त करी और इसके उपरान्त वसन्त ने उसके निश्चय से अच्छे सफल पदवाले वचनों से यह रति आश्वासित की (समझाई)॥

४६—अथ मदनबधूरुपप्लवान्तं
व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव।
शशिनइव दिवातनस्य लेखा
किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम्॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
रतिविलापो नाम चतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

४६—इस के अनन्तर दुःख से दुर्बल रति विपत्ति के अन्त की प्रदोषिका किरणों के नाश से मलिन दिनके चन्द्रमा की लेखा के समान बाट देखने लगी ॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये भाषानुवादे रतिविलापो नामचतुर्थस्सर्गः ४ ॥

कुमारसंभवे

पंचमस्सर्गः ।

१ – तथा समक्षं दहता मनोभवं
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥

२ – इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥

३ – निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां
सुतां गिरिशप्रतिसक्तमानसाम् ।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा
निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ॥

४ – मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवता-
स्तपः क्व वत्से ! क्व च तावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्त्रिणः ॥

५ – इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां
शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥

कुमारसंभवे

तपःफलोदयोनाम पंचमस्सर्गः ॥

१ – पार्वती ने तिसप्रकारसे नेत्रों के आगे कामदेव को भस्म करतेहुए शिवजी से मनोरथ के टूटजानेपर मन से रूप की निन्दा करी अवश्य पतियों में सौभाग्य है फल जिसका ऐसी सुन्दरता होती है ॥

२ – उस (पार्वती) ने समाधि को लगाकर तपों से अपने सौन्दर्य के सफल करने की इच्छा की और प्रकार से कैसे वह दो मिलसक्ते हैं (कौन से दोनों) तिस प्रकार का प्रेम और तैसा (शिवजी) पति ॥

३ – मेनका शिवजी में आसक्त चित्तवाली तप के लिये उद्योग करनेवाली कन्या को सुनकर (इस पार्वती) को हृदय से लगाकर बड़े मुनियों के व्रत से निवारण करती हुई बोली ॥

४ – हे वत्से मन के इष्टदेवता घर में हैं और कहां तप और कहां तुम्हारा यह शरीर कोमल शिरस का पुष्प भ्रमर के पद को सहसक्ता है और (अन्य) पक्षी का नहीं ॥

५ – इसप्रकार से उपदेश करतीहुई मेनका निश्चित इच्छावाली कन्या को उद्योग से निवृत्त करने को नहीं समर्थ हुई वांछित अर्थमें स्थिर निश्चयवाले मनको और निम्नाभिमख (नीचे को जा रहे) जल को कौन लौटासक्ता है ॥

६ – कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा
मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी ।
अयाचतारण्यनिवासमात्मनः
फलोदयान्ताय तपःसमाधये ॥

७ – अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा
कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा ।
प्रजासु पश्चात् प्रथितं तदाख्यया
जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥

८ – विमुच्य सा हारमहार्य्यनिश्चया
विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् ।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं
पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥

९ – यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहै-
र्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम् ।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं
सशैवलासंगमपिप्रकाशते ॥

१०–प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां
व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां बभार याम् ।
अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया
सरागमस्या रशनागुणास्पदम् ॥

६ – इसके उपरान्त किसीसमय स्थिर चित्तवाली पार्वती ने मनोरथ के जाननेवाले समीप में स्थित सखीरूप मुख के उपाय से फल की उत्पत्ति है अन्त जिसकी ऐसी तप की समाधि के लिये वनवास मांगा ॥

७ – इस के उपरांत पार्वती योग्य हठ से प्रसन्न पूजा करने के योग्य पिता से आज्ञा दीहुई पीछे प्रजाओं में उस (पार्वती) के नाम से प्रसिद्ध मोरों से युक्त शृंग (शिखर) को गई ॥

८ – नहीं निवारण करने के योग्य निश्चयवाली उस (पार्वती) ने चंचल लड़ों से चन्दन के छुटानेवाले हार को छोड़ कर बाल सूर्य्य के समान पीतरंगवाले स्तनों के उच्छ्राय (उच्चता) से अलग २ होगयेहैं अंग जिसके ऐसे बल्कल को धारण किया ॥

९ – उन (पार्वतीजी) का मुख भूषित केशोंसे जैसा प्रियहुआ वैसाही जटाओं से भी प्रिय हुआ कमल भ्रमरों की पंक्ति सेही नहीं किन्तु शैवाल के साथ भी शोभित होता है ॥

१०–उस (पार्वती) ने क्षण २में रोमोंके विकार की करनेवाली तिछड़ की हुई मेखला तप के लिये धारण की वही है प्रथम (बन्धन) जिसका इसप्रकार से बांधीहुई उस मेखला ने इन (पार्वती जी) के क्षुद्रघंटिका के स्थान को अरुणाई समेत करदिया ॥

११—विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः
स्तनांगरागारुणिताच्च कन्दुकात् ।
कुशांकुरादानपरिक्षतांगुलिः
कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः ॥

१२—महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः
स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी
निषेदुषी स्थण्डिलएव केवले ॥

१३—पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया
द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं
विलोलदृष्टं हरिणांगनासु च ॥

१४—अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्
घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्द्धयत् ।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां
न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥

१५—अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता-
स्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः ।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्
पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥

११—उस (पार्वती) ने लाख के रस के त्यागकरने से ओष्ठ से निवर्त्तित और स्तनों के राग से लाल गेंद से निवृत्त कियागया कुशों के अंकुरों के लाने से घायल उंगली वाले हाथ को अक्षमाला का साथी किया॥

१२—बहुमूल्य शय्या में लोटने पोटने से गिरेहुए अपने केशों के पुष्पों से भी जो (पार्वती) दुःखित होती थी वह (पार्वती) वाहुरूपी लता का तकिया बनानेवाली होकर केवल मुनियों के बिछौनों से बिछीहुई पृथ्वीही में सोई और बैठी॥

१३—व्रत में स्थित उस (पार्वती) ने दोही में दोको फिर लेने के लिये मानों निक्षेप (धरोहड़) रक्खी पतली लताओं में विलासरूपी चेष्टित (चेष्टाकरना) और हिरणियों में चंचल देखना॥

१४—उस (पार्वती) ने तन्द्रा (आलस्य विशेष) को छोड़ कर छोटे वृक्षों को घटरूपी स्तनों के बहेहुए पय से बढ़ाया स्वामिकार्त्तिक भी प्रथम उत्पन्न हुए जिन वृक्षों के पुत्र (सम्बन्धी) प्रेम को नहीं दूरकरेंगे॥

१५—पसाई के चावलों की अंजलियों के देने से लाड़प्यार कियेगये मृग उस (पार्वती) में ऐसे विश्वासयुक्त हुए जैसे कुतूहल से मृगों के नेत्रों से अपने नेत्रों को सखियों के सन्मुख मापा॥

१६–कृताभिषेकां हुतजातवेदसं
त्वगुत्तरासंगवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागम-
न्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥

१७–विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं
द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि ।
नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं
तपोवनं तच्च बभूव पावनम् ॥

१८–यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना
न तावता लभ्यममंस्त कांक्षितम् ।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं
तपो महत् सा चरितुं प्रचक्रमे ॥

१९–क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या
तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्म्मितं
मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ॥

२०–शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा ।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा-
मनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥

१६–स्नान करनेवाली हवन करनेवाली बल्कल के दुपट्टे को धारण करनेवाली स्तोत्रों को पाठ करनेवाली उस (पार्वती) के देखने की इच्छा करनेवाले ऋषिलोग आये (और नहीं यहां छोटेकी सेवा का दोष है इसलिये कहते हैं) धर्म वृद्धों में अवस्था नहीं देखी जाती है ॥

१७–और विरोधी प्राणियों से त्यागकरदिया है प्रथम का वैर जिसने वृक्षों के द्वारा अभीष्ट फलसे अतिथियों का पूजन करनेवाला नवीन पर्णशालाओं के मध्य में इकट्ठी है अग्नि जिसमें ऐसा वहतपोवन पवित्र करनेवालाहुआ ॥

१८–उस (पार्वती) ने जिस समय उतने पूर्व तप के नियम से वांछित फलको प्राप्त होनेको समर्थ नहीं समझा उसीसमय अपने शरीर की सुकुमारता को न देखकर अति कठिन तपस्या करनेका प्रारम्भ किया ॥

१९–जो (पार्वती) कन्दुक की क्रीड़ा से भी ग्लानता को प्राप्त होती थी उस (पार्वती) ने मुनियोंके चरितमें प्रवेशकिया मानों इस (पार्वती) का शरीर सुवर्ण के कमल से बनाहुआ है (इसी से) प्रकृति (कमल के स्वभाव) से कोमल भी है और (सुवर्ण के स्वभाव से) कठिनही है ॥

२०–ग्रीष्म ऋतु में श्वेत मन्द मुसक्कानवाली सुन्दर कटि-वाली (पार्वती) दीप्तिमान चार अग्नियों के बीच में स्थित होकर नेत्रों के नाश करनेवाले तेज को जीतकर अन्यत्र दृष्टि न करके सूर्य्य को देखनेलगी ॥

२१–तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभि-
र्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।
अपांगयोः केवलमस्य दीर्घयोः
शनैःशनैः श्यामिकया कृतं पदम्॥

२२–अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं
रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधि-
र्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः॥

२३–निकामतप्ता विविधेन वह्निना
नभश्चरेणेन्धनसम्भृतेन सा।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवै-
र्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम्॥

२४–स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
चिरेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः॥

२५–शिलाशयान्तामनिकेतवासिनीं
निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयै-
र्महातपः साक्ष्यइव स्थिताः क्षपाः॥

२१–सूर्य्य की किरणों से तिसप्रकार से सन्तप्त इस (पार्वती) के मुख ने कमल की शोभा धारण की किन्तु इस मुख के दीर्घ नेत्रोंके कोयोंमें केवल धीरेधीरे कृष्णताने स्थान किया ॥

२२–विना मांगे प्राप्त केवल जल और अमृतमय चन्द्रमा की किरणें यह सब उस (पार्वती) के भोजनकर्म के लिये हुए वृक्षों की वृत्ति से अलग उपायवाला भोजन का विधान नहींहुआ ॥

२३–पांचप्रकारवाली आकाशमें चलनेवाली इन्धन से दीप्तिमान अग्नि से सन्तप्त वह (पार्वती) वर्षाकाल में नवीन जलों से सिंचीहुई होकर पृथ्वी के साथ ऊर्ध्व गमन करनेवाली भाप को छोड़तीहुई ॥

२४–प्रथम जल के विन्दु उस (पार्वती) के पलकों के बालों में क्षणभर स्थित ओष्ठों के ताड़न करनेवाले स्तनों के ऊपर गिरने से खण्ड २ होगये इस के उपरान्त उदर की रेखाओं में गिरे इस प्रकार से बहुत बिलम्ब से नाभि में प्राप्तहुए ॥

२५–निरन्तर मध्य में वायुवाली वृष्टियों में घर में नहीं रहनेवाली शिलापर सोनेवाली उस (पार्वती) को बिजली रूप दृष्टियों से देखतीहुई रात्रियां मानों महातप की साक्षीरूप स्थित हैं ॥

२६–निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः
सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा ।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः
पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती ॥

२७–मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि
प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना ।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां
सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम् ॥

२८–स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥

२९–मृणालिकापेलवमेवमादिभि-
र्व्रतैः स्वमंगं ग्लपयन्त्यहर्निशम् ।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं
तपस्विनां दूरमधश्चकार सा ॥

३०–अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक्
ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं
शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ॥

२६–उस (पार्वती) ने अत्यन्त हिम (तुषार) के डालने-वाले पवनवाली पौष की रात्रियां जल के वास में तत्पर आपस में एक दूसरे को पुकार रहे आगे वियोग को प्राप्त हुए चक्रवाकों के जोड़े में कृपावती होकर व्यतीत कीं ॥

२७–उस (पार्वती) ने रात्रि के समय कमल के तुल्य सुग-न्धवाले कंपमान ओष्ठरूपी पत्रों से शोभावाले मुख से तुषार के बरसने से नष्ट है कमल की सम्पत्ति जिनकी ऐसे जलों में मानों कमल आरोपण किया ॥

२८–आपही से गिरेहुए पत्रही हैं भोजन जिसके यह तप की पराकाष्ठा (पल्लेसिरे का तप) है उस (पार्वती) ने फिर वह भी छोड़दिया इसीसे प्रिय बोलनेवाली उस (पार्वती) को पुराण के जाननेवाले अपर्णा कहते हैं ॥

२९–कमल की नाल के समान कोमल अपने शरीर को इस प्रकार के व्रतों से रात्रिदिन कृश करनेवाली उस (पार्वती) ने कठिन शरीरों से इकट्ठे कियेहुए मुनियों के तप का अत्यन्त तिरस्कार किया ॥

३०–इस के उपरान्त कृष्ण मृगचर्म और पलाशदण्ड (ढाक की लकडीकादण्ड)के धारण करनेवाले प्रगल्भ (बड़ेदृढ़) बोलनेवाले ब्रह्ममय तेज से मानों जाज्वल्यमान किसी जटाधारी ब्रह्मचारीने शरीरको धारण किये ब्रह्मचर्य्य आश्रम के समान तपोवन में प्रवेश किया ॥

३१–तमातिथेयी बहुमानपूर्वया
सपर्य्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥

३२–विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां
परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन् ऋजुनैव चक्षुषा
प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥

३३–अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं
जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥

३४–अपि त्वदावर्जितवारिसम्भृतं
प्रवालमासामनुबन्धिवीरुधाम् ।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते
तुलां यदारोहति दन्तवाससा ॥

३५–अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः
करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।
य उत्पलाक्षि ! प्रचलैर्विलोचनै-
स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥

३१–अतिथियों में साध्वी (श्रेष्ठ आचरणवाली) पार्वती ने उस ब्रह्मचारी को बहुत मानपूर्वक पूजनसे आगे चलके लिया समानतामें भी उस पार्वती की ऐसी प्रवृत्ति क्यों हुई उसको कहते हैं समताके होनेपरभी स्थिर चित्त वालोंकी एक विशेष मूर्त्तियोंमें बहुत गौरवता युक्त चेष्टा होती हैं–

३२–उस ब्रह्मचारीने विधिपूर्वक किये हुए (पार्वती के) पूजनको ग्रहण करके और क्षणभर विश्राम करके पार्वती को विलासरहित दृष्टिसे देखता हुआ क्रम को न त्याग कर कहना प्रारम्भ किया–

३३–क्या होमादिक करने के लिये समिध और कुशा सुलभहैं क्या जल तुम्हारे स्नानके योग्यहैं क्या अपनी सामर्थ्यके अनुसार तपमें प्रवृत्त होतीहो क्योंकि शरीर पहला धर्म का साधन है–

३४–क्या तुमसे सींचेहुए जलके द्वारा उत्पन्न हुआ इन लताओंका पत्र अनुस्यूत (ग्रथित) है जो पत्ता बहुतकाल से लाखके रंगके छूटने पर भी रक्त तुम्हारे अधरकी समताको प्राप्त होता है–

३५–हाथमें स्थित कुशाओंके स्नेहसे लेजाने वाले (उन) हरिणों में क्या तुम्हारा मन प्रसन्न है हे कमलाक्षि जो हरिण चञ्चल नेत्रोंसे तुम्हारे नेत्रोंकी मानों समानता करते हैं–

३६–यदुच्यते पार्वति ! पापवृत्तये
न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने !
तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥

३७–विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभि-
स्तथा न गांगैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः ।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलै-
र्महीधरः पावितएष सान्वयः ॥

३८–अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे
त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि ! ।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया
यदेकएव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥

३९–प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना
न मां परं सम्प्रतिपत्तुमर्हसि ।
यतः सतां सन्नतगात्रि ! संगतं
मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥

४०–अतोऽत्र किञ्चिद्भवतीं बहुक्षमां
द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने !
न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥

४१–कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधस-
स्त्रिलोकसौन्दर्य्यमिवोदितं वपुः ।
अमृग्यमैश्वर्य्यसुखं नवं वय-
स्तपः फलंस्यात् किमतः ! परं वद ॥

३६–हे पार्वति रूप पातकके लिये नहीं होताहै यह जो कहते हैं वह सत्यहै वैसेही हे उत्तम दर्शनवाली तुम्हारा उत्तम स्वभाव तपस्वियों के भी उपदेशपने को प्राप्त है ॥

३७–यह हिमवान् सप्तर्षियोंसे बिखराये हुए बलियों (पुष्पों की भेटों) से प्रसन्न आकाश से गिरेहुए गंगाजीके जलों से वैसा नहीं पवित्र किया गया जैसा कि पापरहित तुम्हारे चरित्रों से पुत्र पौत्रों समेत पवित्र कियागया है ॥

३८–हे उत्तम मनोरथ वाली इस कारणसे धर्म अत्यन्त आज मुझे धर्म अर्थ और कामों में श्रेष्ठ विदित होता है जिस कारणसे अर्थ और कामके विषयसे रहित मनवाली तुझसे एक धर्मही अंगीकार करके सेवन किया जाता है॥

३९–तुमसे की गई है अधिक पूजा जिसकी ऐसे मुझको अन्यभावसे समझने को (तुम) योग्य नहींहो हे नम्रअंग वाली जिस कारण से पण्डित लोग सज्जनोंकी मित्रता को साप्तपदीन (सातपदोंके कहनेसे होनेवाली) कहतेहैं॥

४०–हे तपोधने इस कारण से क्षमावाली तुमसे ब्राह्मणत्वसे प्राप्त है चपलता जिसको ऐसा यह जन (मैं) कुछ पूछनेकी इच्छा करताहै जो छुपानेके योग्य नहो तो तुम कहनेको योग्य हो ॥

४१–हिरण्यगर्भ के कुलमें जन्म शरीर तीनों लोकों के सौन्दर्य के समान प्रकाशित है ऐश्वर्य्य का सुख सिद्धही है यौवन अवस्था है इससे अन्य तपका फल क्याहै कहो ॥

४२–भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहा-
न्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी ।
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा
न दृश्यते तच्च कृशोदरि ! त्वयि ॥

४३–अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृति-
र्विमानना सुभ्रु ! कुतः पितुर्गृहे ।
पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं
प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये ॥

४४–किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥

४५–दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।
अथोपयन्तारमलं समाधिना
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥

४६–निवेदितं निश्वसितेन सोष्मणा
मनस्तु मे संशयमेव गाहते ।
न दृश्यते प्रार्थयितव्यएव ते
भविष्याति प्रार्थितदुर्लभः कथम् ॥

४७–अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा
चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते ।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः
कपोलदेशे कलमाग्रपिंगलाः ॥

४२–सहने के नहीं योग्य अनिष्ट (भर्त्रादिकों से उत्पन्न दुःख) से भी धीर स्त्रियोंकी ऐसी प्रवृत्ति होती है और विचारके मार्गमें भेजेहुये चित्तसे हे कृशोदरि वहभी तुम में नहीं दिखाई देताहै ॥

४३–हे सुन्दर भृकुटीवाली यह तुम्हारी आकृति दुःखसे अनादर प्राप्तहोने के योग्य नहीं है पिताके घरमें अनादरका सम्भव नहीं है अन्यसे अभिमर्श (दबाव) भी तुझको नहीं है सर्पकी मणि लेने को हाथ कौन फैलावै ॥

४४–हे गौरि किस हेतुसे तुमने आभरणों को छोड़के बुढ़ापे में शोभा देनेवाला बल्कल धारण किया है क्या प्रदोष में प्रकट चन्द्रमा और तारेवाली रात्रि अरुण के पास जाने की इच्छा करती है बताओ ॥

४५–जो स्वर्ग चाहतीहो तो श्रम वृथा है क्योंकि देवभूमि तुम्हारे पिताके प्रदेश हैं अथवा जो वरको चाहती हो तो तप न करो अवश्य रत्न नहीं ढूँढ़ताहै किन्तु वही (रत्न) ढूँढ़ा जाता है ॥

४६–उष्ण श्वासहीसे विदित (तेरा वरमांगना) हुआ तिस पर भी मेरा मन संशयहीको प्राप्तहोताहै क्योंकि तेरे प्रार्थना करने के योग्यही नहीं दिखाई देताहै (तो) प्रार्थना करने से भी दुर्लभ कैसे होगा ॥

४७–आश्चर्य है कि तेरा अभीष्ट कोई कठिन तरुण अवस्था वालाहै जो तरुण बहुत कालसे कानके कमलों से शून्यता को प्राप्त कपोल स्थलमें शिथिल बन्धन वाली लटकरहीं धानोंके अग्रभागोंके समान पीली जटाओंकी उपेक्षा (अनादर) करताहै ॥

४८–मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां
दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम् ।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा
सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥

४९–अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं
तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः ।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो
न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः ॥

५०–कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि ! विद्यते
ममापि पूर्वाश्रमसञ्चितं तपः ।
तदर्द्धभागेन लभस्व कांक्षितं
वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ॥

५१–इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना
मनोगतं सा न शशाक शंसितुम् ।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्त्तिनीं
विवर्त्तितानञ्जननेत्रमैक्षत ॥

५२–सखीतदीया तमुवाच वर्णिनं
निबोध साधो ! तव चेत् कुतूहलम् ।
यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं
कृतं तपःसाधनमेतया वपुः ॥

५३–इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रिय-
श्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी ।
अरूपहार्य्यं मदनस्य निग्रहात्
पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ॥

४८–मुनियों के व्रतों से अत्यन्त दुर्बल सूर्य्य से दग्ध (जले हुए) आभूषणों के स्थानवाली दिन में चन्द्रमा की कला के समान स्थित तुझको देखनेवाले किस सजीव (पुरुष) का मन नहीं दुःखित होता है ॥

४९–तेरे प्रिय को सौंदर्य्य के गर्व से ठगाहुआ जानता हूं जो मधुर देखनेवाले कुटिल रोमवाले इस तुम्हारे नेत्र को लक्ष्य अपने मुख को नहीं करता है ॥

५०–हे पार्वति कितने अधिक दिनतक तप करोगी मेरा भी ब्रह्मचर्य्य आश्रम में इकट्ठा कियाहुआ तप विद्यमान है उस के अर्द्ध भाग से वांछित वर को प्राप्त हो (परन्तु मैं) उस वर को अच्छेप्रकार से जानने की इच्छा करता हूं ॥

५१–इसप्रकार ब्राह्मण से भीतर जायकर कहीगई वह (पार्वती) अभीष्ट वरके कहनेको नहीं समर्थहुई इसके उपरान्त समीप में स्थित सखी को चलाये हुए अंजन से रहित नेत्रों से देखा ॥

५२–उस (पार्वती) की सखी उस ब्रह्मचारी से बोली हे साधो जो तुम्हें आश्चर्य्य होय तो सुनो जिसलिये इस (पार्वती) ने कमल को आतपत्र (छाते) के समान शरीर को तप का साधन किया ॥

५३–मानवती यह (पार्वती) अधिक ऐश्वर्य्यवाले इन्द्रादिक चारों दिशाओंके ईश्वरोंको छोड़कर कामदेव के मारने से सौन्दर्य्य से वशीभूत करने के अयोग्य पिनाकपाणि (शिवजी) पति को प्राप्तहोना चाहती है (शिवजी को पति बनाना चाहती है) ॥

५४–असह्यहुङ्कारनिवर्त्तितः पुरा
पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः ।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणो-
द्विशीर्णमूर्त्तेरपि पुष्पधन्वनः ॥

५५–तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे
ललाटिकाचन्दनधूसरालका ।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं
तुषारसङ्घातशिलातलेष्वपि ॥

५६–उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः
सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम् ।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका
वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ॥

५७–त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं
निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
क्व नीलकण्ठ ! व्रजसीत्यलक्ष्यवा-
गसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ॥

५८–यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे
न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम् ।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया
रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः ॥

५९–यदा च तस्याधिगमे जगत्पते-
रपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती ।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरो-
रियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम् ॥

५४–पूर्व काल में असह्य हुंकारसे निवृत्त कियागया शिवजी में नहीं प्राप्त हुआ है फल जिसको ऐसे नष्ट शरीरवाले भी काम का बाण इस (पार्वती) को हृदयमें दीर्घपतन (वेगपूर्वक गिरने) से कृश करता है ॥

५५–तब से लेके अधिक कामवाली तिलक के चन्दनसे धूसर केशवाली पार्वती किसी समय भी तुषारके समूहरूपी शिलातलों में भी सुखको नहीं प्राप्त हुई ॥

५६–शिवजी के प्रारम्भ किया गया है गीतका क्रम जिसका ऐसे चरित्रमें गद्गद कण्ठ में स्खलित (अस्तव्यस्त) पदोंसे वनमें संगीत (गान) के निमित्त से सखी किन्नर राजोंकी कन्याओंको इसने अनेकवार रोदन कराया ॥

५७–और तीसरा भाग शेष रहा है जिनका ऐसी रात्रियों में क्षणभर नेत्रोंको मूंदकर शीघ्रही हे नीलकण्ठ कहां जाते हो ऐसे व्यर्थ वचनवाली मिथ्या कण्ठमें छोड़ा है वाहु रूपी बन्धन जिसने ऐसी होकर जगपड़ी ॥

५८–जिस हेतु से तुम पण्डित लोगों से सर्वव्यापी कहे जा-तेहो तो रतिनाम भावमें स्थित इस जनको क्यों नहीं जानतेहो यह मूढ़ (पार्वती) से अपने हाथसे लिखेहुए शिवजी एकान्त में आक्षेप (आरोपण) किये जाते हैं ॥

५९–जगत्के पति उन (शिवजी) की प्राप्ति में और उपायों को ढूंढरही जिस समय नहीं देखती हुई तिस समय यह (पार्वती) गुरूकी आज्ञासे तपकरने को तपोवन में हम लोगों समेत आई ॥

६०—द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं
फलं तपःसाक्षिषु दृष्टमेष्वपि ।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते
मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ॥

६१—न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा
सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम् ।
तपःकृशामभ्युपपत्स्यते सखीं
वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम् ॥

६२—अगूढसद्भावमितींगितज्ञया
निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया ।
अयीदमेवं परिहास इत्युमा-
मपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः ॥

६३—अथाग्रहस्ते मुकुलीकृतांगुलौ
समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम् ।
कथञ्चिदद्रेस्तनया मिताक्षरं
चिरव्यवस्थापितवागभाषत ॥

६४—यथा श्रुतं वेदविदांवर ! त्वया
जनोऽयमुच्चैःपदलंघनोत्सुकः ।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं
मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥

६०–पार्वती से स्वयं लगाये हुए तपके साक्षी वृक्षोंमें भी फल उत्पन्नहुआ इस (पार्वती) का शिवविषयक मनोरथ तो उत्पन्न होनेवाला भी नहीं दीखता॥

६१–प्रार्थना करने पर भी दुर्लभ वह शिवजी तपसे दुर्बल सखियोंसे अश्रुपात समेत देखीगई इस हमारी सखीपर उस इन्द्रके न बरसाने से पीड़ित जुतीहुई पृथ्वीपर इन्द्र के समान कब अनुग्रह करेंगे (यह मैं) नहीं जानतीहूं॥

६२–हृदयके भावकी जाननेवाली उस (सखी) ने प्रकाशित अच्छे २ अभिप्राय से निवेदन कियेगये (कहेगये) सुन्दर ब्रह्मचारीने नहीं प्रकट होताहै हर्ष का लक्षण जिसका ऐसा होकर हे पार्वती यह सत्य है अथवा हास्य है इस प्रकार करके पार्वती से पूछा॥

६३–इसके उपरान्त पार्वती सम्पुट की हुई हैं उंगुली जिसमें ऐसे हस्ताग्र में स्फटिक (बिल्लौर) की जपमालाको अर्पण करती हुई बड़े कष्ट से बहुत काल में वचन को स्वीकार करनेवाली होकर अल्पाक्षरों से बोली॥

६४–हे वेदविदांवर तुमने यथार्थ सुना है यह जन (पार्वती) उच्चस्थान के उल्लंघन में उत्सुक है क्या यह तप उसकी प्राप्तिमें साधन है (उपकारीहै) (किन्तुनहींहै) परन्तु मनोरथों की अगति नहीं है (अपनी शक्ति से बाहर भी मनोरथ किये जाते हैं)॥

६५–अथाह वर्णी विदितो महेश्वर-
स्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्त्तसे।
अमंगलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं
तवानुवृत्तिं न च कर्त्तुमुत्सहे॥

६६–अवस्तुनिर्बन्धपरे! कथं नु ते
करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना
सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम्॥

६७–त्वमेव तावत् परिचिन्तय स्वयं
कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं
गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च॥

६८–चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः
परोऽपि को नाम तवानुमन्यते।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयो-
र्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु॥

६९–अयुक्तरूपं किमतः परं वद
त्रिनेत्रवक्षःसुलभं तवापि यत्।
स्तनद्वयेऽस्मिन् हरिचन्दनास्पदे
पदं चिताभस्मरजः करिष्यति॥

६५–इसके उपरान्त ब्रह्मचारी बोला कि शिवजी को मैं जानताहूं फिर भी तुम उन्हीं शिवजी की प्रार्थना करतीहो (जो कि तुम्हारे मनोरथ को नष्टकरके चलेगयेथे) अमंगल आचरण में प्रीति करने वाले उन (शिवजी) को जानकर तुम्हें सम्मतिदेने को (मैं) नहीं समर्थहूं ॥

६६–हे तुच्छ वस्तु में हठवाली विवाहमें ढकेहुये हस्तसूत्र वाला यह तेराहाथ सबके भूषण बनानेवाले शिवजी के हाथसे उस प्रथम ग्रहणको कैसे सहेगा ॥

६७–हे पार्वती तुम्हीं अपने चित्तसे विचारो तो कि हंसके चिह्नवाला बधूका दुकूल (डुपट्टा) और रुधिरके विन्दुओंका बरसनेवाला गजचर्म यह दोनों कभीभी क्या संगति के योग्य हैं ॥

६८–चतुष्क (किसीप्रकार के गृह) में पुष्पके समूह पर धरे गये तेरे चरणों के महावरसे युक्त पादन्यास चिह्नों को बिखरेहुए केशवाली प्रेतभूमियों में कोई शत्रुभी क्या अच्छा मानेगा (किन्तु नहीं मानेगा) ॥

६९–शिवजीका आलिंगन तुझको सुलभभी है परन्तु इससे अत्यन्त अयोग्य क्या है बताओ जिस कारण से हरिचन्दनके स्थानरूप तेरे दोनों स्तनोंमें रजरूप चिताकी भस्म स्थान बनावेगी ॥

७०–इयञ्च तेऽन्या पुरतोविडम्बना
यदूढया वारणराजहार्य्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया
महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति॥

७१–द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां
समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावत-
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥

७२–वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते
तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥

७३–निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः
क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी
श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया॥

७४–इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि
प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया
विलोचने तिर्य्यगुपान्तलोहिते॥

७०–और यह तेरा पहलेही और हास्यहै कि व्याहीहुई गजेंद्र वाहनके योग्य तुझे वृद्ध बैलपर चढ़ीहुई देखकर साधू लोग हँसेंगे ॥

७१–शिवजी के मिलनेकी प्रार्थनासे इससमय दोवस्तु शोच करनेकेयोग्य हुई वह दीप्तिवाली चन्द्रमाकी कला और इससंसारके आनन्दकी देनेवाली तुम ॥

७२–शरीर तो विकारी नेत्रवाला है जन्म अज्ञात है धन दिगम्बरपने से विदित है हे बाल मृगोंकेसमान नेत्रवाली वरों में जो ढूंढ़ाजाता है वह क्या शिवजी में एकभी है (कोई नहीं है) ॥

७३–इस निकृष्ट मनोरथ से मनको हटाओ कहां उसप्रकार के (वह शिवजी) और कहां उत्तमभाग्य के चिह्नवाली तुम साधुलोग श्मशानके शूलकी वेदमें कहीहुई यूप (पशुओं के बांधनेका संस्कार कियाहुआ खम्भ) की सत्क्रिया नहीं चाहते हैं ॥

७४–इसप्रकारसे ब्राह्मणकेप्रातिकूल कहनेवाले होनेपर चंचल अधरसे लक्षित कोपवाली पार्वतीने कोयोंमें रक्त भृकुटियोंकी कुटिलतापूर्व्वक नेत्र टेढ़े करलिये ७४ ॥

७५–उवाच चैनं परमार्थतोहरं
न वेत्सि नूनं यतएवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्॥

७६–विपत्प्रतीकारपरेण मंगलं
निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः
किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः॥

७७–अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्य्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

७८–विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथ वेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्तेरवधार्य्यते वपुः॥

७९–तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते
ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये।
तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं
विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम्॥

७५–और इस ब्रह्मचारी से बोली कि (तुम) तत्त्वसे शिवजी को नहीं जानतेहो जिससे कि मुझसे ऐसा कहतेहो मूर्ख लोग संसारके मनुष्यों के समान असाधारण कठिनतासे ज्ञात होनेके कारणवाले महात्माओं के चरित्रकी निन्दा करते हैं ॥

७६–विपत्तिके प्रतीकार (दूरहोने) को चाहनेवाला अथवा ऐश्वर्य्यको चाहनेवाला मंगल(उत्तम पदार्थ) का सेवन करता है रक्षाकरनेमें समर्थ अभिलाषा से रहित शिवजीको तृष्णासे अन्तः करणकी वृत्तिके दूषित करनेवाले इन (मंगलों) से क्या प्रयोजन है ॥

७७–वह(शिवजी) दरिद्रीहोनेपर सम्पत्तियोंके कारणहैं श्मशान के आश्रय होकरके तीनोंलोकों के नाथहैं वह (शिवजी) भयंकर आकारवाले होकर शिव (सौम्यरूप) कहेजाते हैं शिवजीकी यथार्थताके जाननेवाले(कोई)नहीं हैं ॥

७८–विश्वमूर्त्ति (शिवजी) का शरीर भूषणों से शोभित है अथवा सर्पोंसेयुक्त है गजचर्म का धारण करनेवाला है अथवा डुपट्टेका धारण करनेवाला है कपालवाला है अथवा चन्द्रशेखर है निश्चय नहीं कियाजाता है ॥

७९–उन (शिवजी) के शरीरके संसर्गको प्राप्त होकरके चिता भस्मरूपी रज शुद्धिके निमित्त समर्थ होता है अवश्य ताण्डवमें भाव बतानेसे गिरीहुई चिता भस्मरूपी रज को देवतालोग शिरमें धारण करते हैं ॥

८०–असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः
प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोऽरुणांगुली॥

८१–विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना
त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं
कथं सलक्ष्यप्रभवो भविष्यति॥

८२–अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥

८३–निवार्य्यतामालि! किमप्ययं वटुः
पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥

८४–इतो गमिष्याम्यथ वेति वादिनी
चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः
समाललम्बे वृषराजकेतनः॥

८५–तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि-
र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥

८०–मदका टपकानेवाला दिग्गजहै बाहन जिसका ऐसा इंद्र, दरिद्री बैलसे चलनेवाले इन(शिवजी)के चरणोंको मुकुटसे प्रणाम करके फूलेहुए कल्पवृक्ष के फूलोंके परागसे रक्त उंगलीवाले करता है ॥

८१–नष्ट स्वभाववाले दोषोंको कहनेकी इच्छा करनेवालेभी तुमने शिवजी के प्रति एक जन्म नहीं ज्ञातहोता है यह अच्छा कहा जिन (शिवजी)को ब्रह्माकाभी कारण कहते हैं वह (शिवजी) कैसे ज्ञातहै जन्म जिनका ऐसेहोंगे॥

८२–अथवा विवादसे क्या है तुमने जिसप्रकार से वह (शिवजी) सुने हैं (वह) अत्यन्त उसीप्रकारकेहों मेरा मन तो इन (शिवजी) में शृंगारही है एक रस जिसका इसप्रकारसे स्थितहै स्वेच्छाका व्यवहारकलंकको नहीं देखताहै॥

८३–हे सखि फड़कते होठवाला यहबटु (ब्रह्मचारी) फिर कुछ कहनेकी इच्छा करता है निवारणकरो जो महात्माओं को अपवाद लगाताहै केवल वही पापी नहीं होता किंतु जो उससे सुनता है वहभी पातकी होता है ॥

८४–अथवा यहांसे अन्यत्र चलीजाऊंगी यह कहतीहुई स्तनों से गिरपड़ा है वल्कल जिसका ऐसी पार्वती चली और (शिवजी) ने अपने स्वरूपको धारण करके हास्यपूर्व्वक उस पार्वतीको पकड़लिया ॥

८५–उन (शिवजी) को देखकर कांपतीहुई खिन्न शरीरवाली रखनेकेलिये उठायेहुए चरणको धारण कररही पार्वती मार्गमें पर्व्वतके अवरोध से व्याकुल नदी के समान न चली न स्थितहुई ॥

८६–अद्य प्रभृत्यवनतांगि ! तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
तपःफलोदयो नाम पञ्चमस्सर्गः ॥ ५ ॥

—०—

८६–शिवजीके हे झुकेहुए अंगवाली आजसेलेके तुम्हारे त-पोंसे मोललियाहुआ दासहूं ऐसाकहनेपर उस (पार्वती) ने शीघ्र नियमसे उत्पन्नहुए क्लेशको छोड़ा क्लेशफलकी सिद्धसे फिर नवीनताको धारण करता है ॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये भाषानु-वादे तपःफलोदयोनाम पञ्चमस्सर्गः ॥ ५ ॥

—०—

कुमारसम्भवे।

षष्ठस्सर्गः॥

१ – अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथः सखीम्।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति॥

२ – तया व्याहृतसन्देशा सा बभौ निभृता प्रिये।
चूतयष्टिरिवाभ्यासे मधौ परभृतोन्मुखी॥

३ – स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम्।
ऋषीन् ज्योतिर्मयान् सप्त सस्मार स्मरशासनः॥

४ – ते प्रभामण्डलैर्व्योम द्योतयन्तस्तपोधनाः।
सारुन्धतीकाः सपदि प्रादुरासन् पुरः प्रभोः॥

५ – आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्किरवीचिषु।
व्योमगंगाप्रवाहेषु दिङ्नागमदगन्धिषु॥

६ – मुक्तायज्ञोपवीतानि बिभ्रतो हैमवल्कलाः।
रत्नाक्षसूत्रा प्रव्रज्यां कल्पवृक्षा इवाश्रिताः॥

कुमारसम्भवे।

उमाप्रदानोनामषष्ठस्सर्गः ॥

१ – इसके उपरान्त पार्वतीने विश्वरूप शिवजीके पास एकांतमें सखीभेजी कि हिमवान् मेरा दाता प्रमाणकीजिये (ठीककीजिये) ॥

२ – उस सखीसे सन्देशकी कहनेवाली शिवजी में परम आसक्त वह (पार्वती) वसन्तमें स्थिर कोकिला से शब्दायमान आम्रकी शाखाके समान समीपमें शोभितहुई ॥

३ – उन कामके शिक्षाकरनेवाले शिवजीने उसी प्रकारसे प्रतिज्ञा करके पार्वतीजी को दुःख से छोड़कर तेजोमय सप्तऋषियों को स्मरण किया ॥

४ – वह तपरूप धनवाले प्रभाके मण्डल (तेजोंके समूहों) से आकाशको प्रकाशित करतेहुए अरुन्धती समेत शीघ्रही शिवजी के सन्मुख प्रकटहुए ॥

यहांसे छः श्लोकोंमें मुनियों का वर्णन है और कुलक है ॥

५ – तटवाले कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी फेंकनेवाली लहरेंहैं जिनकी दिग्गजों के मदकी सुगन्धिवाले आकाशगंगा के प्रवाहों में स्नान कियेहुए ॥

६ – मुक्ता मणिमय यज्ञोपवीतों के धारण करनेवाले सुवर्णमय वल्कलवाले रत्नमय अक्षसूत्रकी मालावाले संन्यासमें वर्त्तमान कल्पवृक्षोंके समान स्थित ॥

७ – अधःप्रस्थापिताश्वेन समावर्जितकेतुना।
सहस्ररश्मिना साक्षात् सप्रणाममुदीक्षिताः॥
८ – आसक्तबाहुलतया सार्द्धमुद्धृतया भुवा।
महावराहदंष्ट्रायां विश्रान्ताः प्रलयापदि॥

९ – सर्गशेषप्रणयनाद्विश्वयोनेरनन्तरम्।
पुरातनाः पुराविद्भिर्धातार इति कीर्त्तिताः॥
१०–प्राक्तनानां विशुद्धानां परिपाकमुपेयुषाम्।
तपसामुपभुञ्जानाः फलान्यपि तपस्विनः॥
कुलकम्॥
११–तेषां मध्यगता साध्वी पत्युः पादार्पितेक्षणा।
साक्षादिव तपःसिद्धिर्बभासे बह्वरुन्धती॥

१२–तामगौरवभेदेन मुनींश्चापश्यदीश्वरः।
स्त्री पुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्॥

१३–तद्दर्शनादभूत् शम्भोर्भूयान् दारार्थमादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्॥

१४–धर्मेणापि पदं शर्वे कारिते पार्वतीं प्रति।
पूर्वापराधभीतस्य कामस्योच्छ्वसितं मनः॥

७—नीचे घोड़ोंके स्थापन करनेवाले ध्वजाको झुकानेवाले सूर्य्य से आपही प्रणाम समेत देखेगये ॥

८—प्रलयकी विपत्तिमें आसक्त है बाहुरूपी लता जिसमें ऐसी उठाईहुई पृथ्वी के साथ महावाराह की दंष्ट्रा में विश्राम करनेवाले ॥

९—ब्रह्माजी के अनन्तर शेष सृष्टि के उत्पन्न करनेसे पुराण के जाननेवालों से पुरातन ब्रह्माहैं ऐसा कहेगये हैं ॥

१०—अन्य जन्म में उत्पन्नहुए निर्मल फलकी प्राप्तिमें उन्मुख तपके फलोंको भोगकरते हुए भी तपस्वी ॥

११—उन ऋषियों के मध्यमें प्राप्त पतिव्रता पतिके चरणों में दृष्टिकी अर्पण करनेवाली अरुन्धती साक्षात् तपकी सिद्धिके समान अत्यन्त शोभितहुई ॥

१२—शिवजी ने उस अरुन्धती और मुनियों को समानता से देखा स्त्री और पुरुष के भेदकी अपेक्षा नहीं है किन्तु साधुओं का चरित्रही पूज्य है ॥

१३—उस अरुन्धती के दर्शनसे शिवजी को स्त्री के लिये बड़ा आदर हुआ क्योंकि धर्म संबंधिनी क्रियाओंका पतिव्रता स्त्रियां मूल कारण हैं ॥

१४—धर्म (स्त्री के ग्रहण करने के इच्छा रूप) से शिवजी में पार्वती की ओर से स्थान कराने पर पूर्व के अपराध से डरेहुए काम का मन उच्छ्वसित (फिर जीने का अवकाशहुआ ऐसी आशा समेत) हुआ ॥

१५–अथ ते मुनयः सर्वे मानयित्वा जगद् गुरुम् ।
इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वचः ॥

१६–यद्ब्रह्म सम्यगाम्नातं यदग्नौ विधिना हुतम् ।
यच्च तप्तं तपस्तस्य विपक्कं फलमद्य नः ॥

१७–यदध्यक्षेण जगतां वयमारोपितास्त्वया ।
मनोरथस्याविषयं मनोविषयमात्मनः ॥

१८–यस्य चेतसि वर्त्तेथाः स तावत् कृतिनां वरः ।
किं पुनर्ब्रह्मयोनेर्यस्तव चेतसि वर्त्तते ॥

१९–सत्यमर्काच्च सोमाच्च परमध्यास्महे पदम् ।
अद्य तूच्चैस्तरं ताभ्यां स्मरणानुग्रहात्तव ॥

२०–त्वत्सम्भावितमात्मानं बहु मन्यामहे वयम् ।
प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः ॥

२१–या नः प्रीतिर्विरूपाक्ष ! त्वदनुध्यानसम्भवा ।
सा किमावेद्यते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥

२२–साक्षाद्दृष्टोऽसि न पुनर्विद्मस्त्वां वयमञ्जसा ।
प्रसीद कथयात्मानं न धियां पथि वर्त्तसे ॥

१५–इसके उपरान्त सांग वेद के कहनेवाले प्रीति से पुलकितशरीरवाले वह संपूर्ण मुनि शिवजीका पूजन करके यह बोले ॥

१६–जो अच्छे प्रकार से वेद पढ़ाथा जो विधिपूर्व्वक अग्निमें हवन कियाथा और जो तप कियाथा उसका फल आज हमको सिद्धहुआ ॥

१७–जिस कारण से जगत्के स्वामी आपने हमलोगों को मनोरथ के अगोचर अपने मनरूपी देशमें प्राप्त किया (इसी कारण से फल सिद्धहुआ) ॥

१८–जिस मनुष्य के चित्तमें (आप) वर्त्तमान रहतेहो वही सुकर्मियों में श्रेष्ठ है ब्रह्मा के कारण आपके चित्त में जो वर्त्तमानहै फिर वह सुकर्मियोंमें श्रेष्ठहै यह क्या कहनाहै॥

१९–सूर्य्य और चन्द्रमा से उच्चपदपर हम रहते हैं आज तो आपके स्मरणरूपी अनुग्रहसे उन (सूर्य्य और चन्द्रमा) से अत्यन्त उच्चस्थान पर स्थित हैं ॥

२०–हम आपसे सत्कार किये गये अपने को अधिक मानतेहैं सत्पुरुषोंका कियाहुआ आदर अपने गुणों में प्रायः विश्वास को उत्पन्न करता है ॥

२१–हे विरूपाक्ष आपके स्मरण से उत्पन्न हुई हमलोगों की जो प्रीतिहै वह आपसे किस निमित्त कहें क्योंकि(आप) प्राणियों के अन्तर्यामी हैं ॥

२२–हे देव साक्षात् देखे गयेहो परन्तु तत्त्व से हम आपको नहीं जानते इससे प्रसन्न हूजिये (और) अपने स्वरूपको कहिये क्योंकि आप बुद्धियोंके मार्गमें नहीं वर्त्तमान हैं॥

२३–किं येन सृजसि व्यक्तमुत येन बिभर्षि तत्।
अथ विश्वस्य संहर्ता भागः कतम एष ते॥

२४–अथ वा सुमहत्येषा प्रार्थना देव! तिष्ठतु।
चिन्तितोपस्थितांस्तावत् शाधि नः करवाम किम्॥

२५–अथ मौलिगतस्येन्दोर्विशदैर्दशनांशुभिः।
उपचिन्वन् प्रभां तन्वीं प्रत्याह परमेश्वरः॥

२६–विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित् प्रवृत्तयः।
ननु मूर्त्तिभिरष्टाभिरित्थम्भूतोऽस्मि सूचितः॥

२७–सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रतियाचितः॥

२८–अत आहर्तुमिच्छामि पार्वतीमात्मजन्मने।
उत्पत्तये हविर्भोक्तुर्यजमान इवारणिम्॥

२९–तामस्मदर्थे युष्माभिर्याचितव्यो हिमालयः।
विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः॥

३०–उन्नतेन स्थितिमता धुरमुद्वहता भुवः।
तेन योजितसम्बन्धं वित्त मामप्यवञ्चितम्॥

२३—हे देव यह आपकी कौनसी मूर्त्ति है क्या जिस मूर्त्ति से संसारको उत्पन्न करतेहो अथवा जिस मूर्त्ति से उस संसारका पालन करतेहो अथवा जो मूर्त्ति इस संसार की नाश करनेवाली है ॥

२४—अथवा हे देव बड़ीभारी यह प्रार्थनाहो (अर्थात् इससे कुछ प्रयोजन नहीं है) चिन्तवन करने से उपस्थित हम लोगों को आज्ञादीजिये कि क्या करें ॥

२५—इसके उपरान्त शिवजी शिरमें प्राप्त चन्द्रमा की अल्प कान्ति को श्वेत दांतोंकी किरणों से बढ़ातेहुए बोले ॥

२६—हे मुनि लोगो कोई भी मेरे व्यापार अपने लिये नहीं होतेहैं जैसे कि तुम लोगों को विदित है आठ मूर्त्तियोंसे इसप्रकार का सूचित (जनाया गया) हूं ॥

२७—वह मैं तृष्णा (पिपासा) से व्याकुल चातकों (पपीहों) से वृष्टि के लिये मेघके समान शत्रुसे पीड़ित देवता लोगोंसे पुत्र उत्पन्न करने के लिये मांगागयाहूं ॥

२८—इसकारण से पुत्रके लिये पार्वती को अग्नि के लिये अरणी (वह लकड़ी जिससे अग्नि निकलती है) को यजमानके समान लानेको इच्छा करताहूं ॥

२९—हमारे निमित्त तुम लोगोंको वह पार्वती हिमालयसे मांगनी चाहिये सत्पुरुषोंसे कियेहुए संबंध विकारको नहीं प्राप्त होतेहैं ॥

३०—उन्नत प्रतिष्ठावान् पृथ्वी के भारके धारण करनेवाले उस हिमवान् से मिलेहुए संबन्धवाले मुझे भी वे ठगा हुआ जानो ॥

३१–एवं वाच्यः स कन्यार्थमिति वो नोपदिश्यते ।
भवत्प्रणीतमाचारमामनन्ति हि साधवः ॥

३२–आर्य्याप्यरुन्धती तत्र व्यापारं कर्तुमर्हति ।
प्रायेणैवंविधे कार्य्ये पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता ॥

३३–तत् प्रयातौषधिप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम् ।
महाकोशीप्रपातेऽस्मिन् संगमः पुनरेव नः ॥

३४–तस्मिन् संयमिनामाद्ये जाते परिणयोन्मुखे ।
जहुः परिग्रहव्रीडां प्राजापत्यास्तपस्विनः ॥

३५–ततः परममित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनिमण्डलम् ।
भगवानपि सम्प्राप्तः प्रथमोद्दिष्टमास्पदम् ॥

३६–ते चाकाशमसिश्यामम्मुत्पत्य परमर्षयः ।
आसेदुरोषधिप्रस्थं मनसा समरंहसः ॥

३७–अलकामतिवाह्यैव वसतिं वसुसम्पदाम् ।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥

३८–गंगास्रोतः परिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि ।
बृहन्मणिशिलासालं गुप्तावपिमनोहरम् ॥

३१–कन्या के लिये उस हिमवान् से इसप्रकार से कहना यह तुम लोगोंको नहीं उपदेश करताहूं क्योंकि पंडित लोग तुम्हारे बनायेहुए आचारको उपदेश करतेहैं ॥

३२–पूजन करने के योग्य अरुन्धती भी उस विवाहकी कृत्य में सहायता करने को योग्य है प्रायः ऐसे कार्य्यों में कुटुम्बिनी स्त्रियों की चतुरता है ॥

३३–इस कारण से औषधिप्रस्थ नाम हिमवत् पुरको कार्य्य की सिद्धि के अर्थ जाओ इस महाकेशी नाम नदी के तटही में हमलोगों का फिर संगम होगा ॥

३४–योगियों के आदि उन शिवजी के विवाहोत्सुकहोने पर ब्रह्माकेतपस्वीपुत्रोंनेस्त्रियों से उत्पन्न हुई लज्जाछोड़दी॥

३५–इसके उपरान्त मुनियों के मण्डल ने परम (अंगीकार वाचक शब्द) यह कहकर प्रस्थान किया शिवजी भी पहले कहेहुए स्थान को प्राप्तहुए ॥

३६–और मनके समान वेगवाले वह परमर्षि लोग खड्ग के समान श्याम आकाश में उड़कर औषधिप्रस्थ नाम हिमवत् पुरको प्राप्तहुए ॥

यहां से आगे दश श्लोकों में हिमवत् पुर का वर्णन है॥

३७–धन सम्पत्तियों का स्थान कुबेर की नगरी को उल्लंघन करके मानों स्थापित कियागया स्वर्गका अभिष्यन्द (अधिक वमन) मानों स्थापित कियागया ॥

३८–गंगाजी के प्रवाहों से वेष्टित (घिराहुआ) प्राकार (परकोटा) के मध्यमें दीप्तिमान औषधिवाला बड़े माणिक्योंके प्राकारवाला छिपाने पर भी मनोहर ॥

३९–जितसिंहभया नागा यत्राश्वा विलयोनयः।
यक्षाः किं पुरुषाः पौरा योषितो वनदेवताः॥

४०–शिखरासक्तमेघानां व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम्।
अनुगर्जितसन्दिग्धाः करणैर्मुरजस्वनाः॥

४१–यत्र कल्पद्रुमैरेव विलोलविटपांशुकैः।
गृहयन्त्रपताकाश्रीरपौरादरनिर्मिता॥

४२–यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु।
ज्योतिषां प्रतिविम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम्॥

४३–यत्रौषधिप्रकाशेन नक्तं दर्शितसञ्चराः।
अनभिज्ञास्तमिस्राणां दुर्दिनेष्वभिसारिकाः॥

४४–यौवनान्तं वयो यस्मिन्नान्तकः कुसुमायुधात्।
रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्य्ययः॥

४५–भ्रूभेदिभिः सकम्पोष्ठैर्ललितांगुलितर्जनैः।
यत्र कोपैः कृताः स्त्रीणामाप्रसादार्थिनः प्रियाः॥

३९–जिस पुर में हाथी सिंहोंसे भयके जीतने वाले हैं घोड़े विलसे उत्पन्न होतेहैं यक्ष और किन्नर पुरजन हैं वनदेवताही स्त्री हैं ॥

४०–जिस पुर में शिखरों में आसक्त मेघवाले गृहों के अनुगर्जितों (गर्जने के पीछे फिर गर्जने) से संदेहयुक्त मुरज (वाद्य विशेष) के शब्द करणों (बाजों के किसी प्रकार के ताड़नों) से प्रकट किये जाते हैं ॥

४१–जिस नगरमें चंचल वृक्षों में पुष्पवाले कल्पवृक्षोंही से पुरजनों के आदर के विनाही निर्म्माण की हुई गृहोंमें यन्त्रों के पताका की शोभा उत्पन्न होती है ॥

४२–जिस पुरमें रात्रिके समय मद्यपान करने के स्थानों में नक्षत्रों के प्रतिविम्ब पुष्पों के बलि होतेहैं ॥

४३–जिस पुर में मेघों से आच्छादित दिनों में रात्रिके समय औषधियों के प्रकाश से दिखाया गया है मार्ग जिनको ऐसी अभिसारिका (पतिके निमित्त संकेतित स्थान में जानेवाली स्त्री) अंधकारों की न जाननेवाली होती है ॥

४४–जिस पुर में अवस्था यौवन पर्य्यन्त है (कोई वृद्ध होता ही नहीं है) काम से अन्य मृत्यु नहीं है रतिके खेदसे उत्पन्न हुई निद्राही चैतन्यता का नाश है अर्थात् सब अमर हैं ॥

४५–जिस पुर में युवा पुरुष भृकुटियों के भंगवाले कंपतेहुए ओष्ठवाले सुंदर अंगुलियों की तर्जनावाले स्त्रियों के कोपों से प्रसन्नतापर्य्यन्त याचक किये जाते हैं ॥

४६–सन्तानकतरुच्छायासुप्तविद्याधराध्वगम्।
यस्य चोपवनं बाह्यं गन्धवद्गन्धमादनम् ॥
कुलकम् ॥

४७–अथ ते मुनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरम्।
स्वर्गाभिसन्धिसुकृतं वञ्चनामिव मेनिरे ॥

४८–ते सद्मनि गिरेर्वेगादुन्मुखद्वाःस्थवीक्षिताः।
अवतेरुर्जटाभारैर्लिखितानलनिश्चलैः ॥

४९–गगनादवतीर्णा सा यथावृद्धपुरःसरा।
तोयान्तर्भास्करालीव रेजे मुनिपरम्परा ॥

५०–तानर्घ्यानर्घ्यमादाय दूरात् प्रत्युद्ययौ गिरिः।
नमयन् सारगुरुभिः पादन्यासैर्वसुन्धराम् ॥

५१–धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुजः।
प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति ॥

५२–विधिप्रयुक्तसत्कारैः स्वयं मार्गस्य दर्शकः।
स तैराक्रमयामास शुद्धान्तं शुद्धकर्मभिः ॥

५३–तत्र वेत्रासनासीनान् कृतासनपरिग्रहः।
इत्युवाचेश्वरान् वाचं प्राञ्जलिर्भूधरेश्वरः ॥

४६–कल्पवृक्षकी छायामें सोयेहुए विद्याधररूपी पथिकवाला सुगन्धिसे युक्त गन्धमादन नाम पर्व्वत जिस पुर के बाहरका उपवन (बगीचा) है ॥

४७–इसके उपरान्त स्वर्गमें उत्पन्नहुए उन मुनियोंने हिमवान् के पुरको देखकर स्वर्गके निमित्त जो पुण्य उसे वंचना (ठगई) मानी ॥

४८–चित्रमें प्राप्त अग्निके समान निश्चल जटाके समूहों से लक्षित वह मुनि लोग उन्मुख द्वारपालों से देखे जाने पर हिमवान् के गृह में उतरे ॥

४९–आकाशसे उतरी हुई वृद्धोंके क्रमसे स्थित हैं आगे चलनेवाले जिसमें ऐसी वह मुनियोंकी पंक्ति जलके मध्यमें सूर्य्य की पंक्ति के समान शोभित हुई ॥

५०–हिमवान् ने अर्घ के निमित्त जलको लेकर सारांश से भारी पादन्यासों (चरणोंके धरने) से पृथ्वीको झुकाते हुए उन मुनियोंको दूरही से आगे चलके लिया ॥

५१–धातुरूप ताम्र ओष्ठवाला उन्नत देवदारुरूपी बड़ीलम्बी भुजावाला स्वभावही से शिलारूप उदरवाला हिमवान् यह प्रकटहुआ ॥

५२–उस हिमवान् ने विधिपूर्वक भोजन के करनेवाले शुद्ध कर्मवाले उन मुनियोंको आपही मार्ग का दिखानेवाला होकर अन्तःपुर में (रनवासमें) प्रवेश करवाया ॥

५३–वहां वेत्रके आसनपर बैठेहुए मुनियों से हिमवान् ने बैठकर हाथजोड़कर यह कहा ॥

५४–अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम् ।
अतर्कितोपपन्नं वा दर्शनं प्रतिभाति मे ॥

५५–मूढं बुद्धमिवात्मानं हैमीभूतमिवायसम् ।
भूमेर्दिवमिवारूढं मन्ये भवदनुग्रहात् ॥

५६–अद्य प्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये ।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ॥

५७–अवैमि पूतमात्मानं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः ! ।
मूर्ध्नि गंगाप्रपातेन धौतपादाम्भसा च वः ॥

५८–जंगमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणाङ्कितम् ।
विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः ॥

५९–भवत्सम्भावनोत्थाय परितोषाय मूर्च्छते ।
अपि व्याप्तदिगन्तानि नांगानि प्रभवन्ति मे ॥

६०–न केवलं दरीसंस्थं भास्वतां दर्शनेन वः ।
अन्तर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः ॥

५४—अविचारित (विना विचारे) प्राप्त आपका दर्शन मेघों के उदय के विना वृष्टि के समान और पुष्प के दर्शन के विना फलके समान मुझे विदित होताहै ॥

५५—आपके अनुग्रहसे अपने को मूर्ख को पंडित के समान लोहेको सुवर्ण के समान पृथ्वीसे स्वर्ग में प्राप्तहुए के समान मानताहूं ॥

५६—आज से लेकर मनुष्यों से शुद्धिके लिये(मैं) आनेके योग्यहूं जिसकारणसे (कि) जो सज्जनोंसे सेवित है वह तीर्थ कहा जाता है ॥

५७—हे द्विजों में उत्तम लोगो अपनेको दोही से पवित्र मानताहूं शिरमें गंगाके गिरने से और आपके धोयेहुए चरणों के जलसे ॥

५८—हे मुनि लोगो दोरूपवाले भी अपने शरिरको पृथक् २ कियेहुए अनुग्रहवाला मानताहूं जंगम (चलनेवाला) शरीर आपकी किंकरता (सेवकाई) में स्थित है (और) स्थावर (अचल) शरीर चरणों से अंकित है ॥

५९—दिगन्तों के व्याप्त करनेवाले (दिशाओं में फैलेहुए) भी मेरे अंग आपकी कृपासे उत्पन्न व्याप्तहोनेवाले सन्तोष के लिये नहीं समर्थ होतेहैं ॥

६०—तेजस्वी आपलोगों के दर्शनसे केवल गुहाओं में प्राप्त अन्धकारही का नाश नहीं हुआ किन्तु मेरे अन्तःकरण में प्राप्त रजोगुण से परे अज्ञान भी नष्टहुआ ॥

६१–कर्तव्यं वो न पश्यामि स्याच्चेत् किं नोपपद्यते।
मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थानं भवतामिह॥

६२–तथापि तावत् कस्मिंश्चिदाज्ञां मे दातुमर्हथ।
विनियोगप्रसादा हि किङ्कराः प्रभविष्णुषु॥

६३–एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्।
ब्रूत येनात्र वः कार्य्यमनास्था बाह्यवस्तुषु॥

६४–इत्यूचिवांस्तमेवार्थं गुहामुखविसर्पिणा।
द्विरिव प्रतिशब्देन व्याजहार हिमालयः॥

६५–अथांगिरसमग्रण्यमुदाहरणवस्तुषु।
ऋषयो नोदयामासुः प्रत्युवाच स भूधरम्॥

६६–उपपन्नमिदं सर्वमतः परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणाञ्च सदृशी ते समुन्नतिः॥

६७–स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः॥

६८–गामधास्यत् कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः।
आरसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत्॥

६१–कार्य्य आपलोगोंका नहीं देखताहूं यदि है तो क्यों नहीं विदित होता अवश्य मेरे पवित्र करनेही के लिये आप का यहां प्रयाण (प्रस्थान) है ॥

६२–तिसपर भी किसी कार्य्य में मुझे आज्ञा देने के योग्यहो जिसकारणसे (कि) दास प्रभुओं में आज्ञा रूप अनुग्रह वाले होते हैं ॥

६३–यह हम यह स्त्रियां यह कुलकी प्राणरूप कन्या इनके मध्यमें जिससे आपका कार्य्य हो वह कहिये बाहरकी वस्तुओं में तो अनादर है ॥

६४–ऐसा कहनेवाले हिमालयने गुहाओंके विवरों (छिद्रों)में फैलेहुए प्रतिशब्द (झांई शब्द) से उस (पूर्वोक्तिही वार्त्ता) को दोबार कहा ॥

६५–इसके उपरान्त ऋषिलोगोंने उदाहरणरूपी वस्तुओं में अग्रणी अंगिरानाम ऋषिको प्रेरित किया (और) वह (अंगिरा नाम ऋषि) हिमवान् से बोले ॥

६६–इससे अधिक भी तुममें योग्यहै तुम्हारे मन और शिख-रोंकी उन्नति समान है ॥

६७–तुम्हें स्थावर रूपी विष्णु उचित कहते हैं तुम्हारी कोख चर और अचर प्राणियोंकी आधारता को प्राप्त है ॥

६८–शेषनाग मृणाल (कमल की डंडी) के समान कोमल फणोंसे पृथ्वी को कैसे धारण करते जो तुम रसातलके मूल पर्य्यन्त अवलम्बन (रोकना) न करते ॥

६९–अच्छिन्नामलसन्तानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः ।
पुनन्ति लोकान् पुण्यत्वात् कीर्त्तयः सरितश्च ते ॥

७०–यथैव श्लाघ्यते गंगा पादेन परमेष्ठिनः ।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ॥

७१–तिर्य्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः ।
त्रिविक्रमोद्यतस्यासीत् स तु स्वाभाविकस्तव ॥

७२–यज्ञभागभुजां मध्ये पदमातस्थुषा त्वया ।
उच्चैर्हिरण्मयं शृंगं सुमेरोर्वितथीकृतम् ॥

७३–काठिन्यं स्थावरे काये भवता सर्वमर्पितम् ।
इदन्तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं वपुः ॥

७४–तदागमनकार्य्यं नः शृणु कार्य्यं तवैव तत् ।
श्रेयसामुपदेशात्तु वयमत्रांशभागिनः ॥

७५–अणिमादिगुणोपेतमस्पृष्टपुरुषान्तरम् ।
शब्दमीश्वरइत्युच्चैः सार्द्धचन्द्रं बिभर्ति यः ॥

७६–कल्पितान्योऽन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः ।
येनेदं ध्रियते विश्वं धुर्य्यैर्यानमिवाध्वनि ॥

६९—नहीं टूटेहुए और निर्मल प्रबन्ध और प्रवाहवाली समुद्र की लहरों से नहीं रोकीगई तुम्हारी कीर्त्ति और नदियां लोकोंको पवित्रतासे पवित्र करती हैं ॥

७०—गंगाजी कारण रूप विष्णुके चरणसे जैसे प्रशंसा कीजाती हैं उसीप्रकार द्वितीयकारण उन्नत शिरवाले तुमसे प्रशंसा कीजाती हैं ॥

७१—तिरछे ऊपर नीचे व्याप्त करनेवाला बड़प्पन विष्णुका त्रिविक्रममें उद्यत होनेपर हुआ और तुम्हारा तो स्वाभाविक बड़प्पन है ॥

७२—यज्ञके भाग लेनेवालों में पदके रखनेवाले तुमने उन्नत सुवर्णमय सुमेरु का शृंग व्यर्थकिया ॥

७३—तुमने सम्पूर्ण कठिनता स्थावर शरीरमें रक्खी तुम्हारा भक्तिसे नम्र यह शरीर तो सज्जनों के आराधन का साधन है ॥

७४—इसकारण से हमारे आगमनका कारण सुनो वह तुम्हाराही कार्य्य है हमलोग तो कल्याणके उपदेशसे इसकार्य्य में अंशके भागी हैं ॥

७५—जो (शिव) अणिमादि गुणों से युक्त अन्य पुरुषोंके नहीं कहनेवाले सबसे उन्नत ईश्वर इस शब्दको और अर्धचन्द्रको धारण करते हैं ॥

७६—जो (शिवजी) आपसमें सामर्थ्य के उत्पन्न करनेवाले पृथ्वी आदिक आत्माओं से इस संसारको मार्गमें घोड़ों से रथके समान धारण करते हैं ॥

७७—योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्त्तिनम् ।
अनावृत्तिभयं यस्य पदमाहुर्मनीषिणः ॥

७८—स ते दुहितरं साक्षात् साक्षी विश्वस्य कर्मणाम् ।
वृणुते वरदः शम्भुरस्मत्संक्रामितैः पदैः ॥

७९—तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि ।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥

८०—यावन्त्येतानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
मातरं कल्पयन्त्वेनामीशो हि जगतः पिता ॥

८१—प्रणम्य शितिकण्ठाय विबुधास्तदनन्तरम् ।
चरणौ रञ्जयन्त्वस्याश्चूडामणिमरीचिभिः ॥

८२—उमा वधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम् ।
वरः शम्भुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः ॥

८३—अस्तोतुः स्तूयमानस्य वन्द्यस्यानन्यवन्दिनः ।
सुतासम्बन्धविधिना भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥

८४—एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥

७७–योगीलोग सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्य्यामी जिन (शिवजी) को ढूढ़ते हैं पंडित लोग जिन शिवजी के स्थानको नहीं है फिर संसारकी विपत्ति का डर जिसमें ऐसा कहते हैं ॥

७८–संसार के कर्मोंके साक्षी वरकेदेनेवाले वह (शिवजी)हम लोगों से कहेहुए वाक्यों से तुम्हारी कन्याको स्वयं (आप) मांगते हैं ॥

७९–उन (शिवजी) को वाणीसे अर्थ के समान कन्यासे युक्त करने को योग्यहो अवश्य अच्छे पतिको दीहुई कन्या पिताके शोचकरनेके योग्य नहीं होती ॥

८०–स्थावर और जंगम जितने प्राणी हैं (वह सम्पूर्ण प्राणी) इस तुम्हारी कन्याको माताबनावें इसकारण से शिवजी संसार के पिता हैं ॥

८१–देवतालोग शिवजी को प्रणामकरके इसके अनन्तर इस के चरणोंको चूड़ामणि (मुकुटमणि) की किरणों से शोभित करें ॥

८२–पार्वतीजी बधू आपदेनेवाले यह हमलोग मांगनेवाले शिवजी वर यह सब सामग्री तुम्हारे कुलकी उन्नति करने में समर्थ है ॥

८३–(आप) कन्या सम्बन्धसे अन्यकी नहीं स्तुति करनेवाले सबसे स्तुतिकरने के योग्य जगत्के वन्दनीय नहीं अन्य की वन्दना करनेवाले जगत् गुरूके भी गुरूहो ॥

८४–अंगिराजीके ऐसा कहने पर पार्वती पिताके समीप में अधोमुखी होकर क्रीड़ाके कमलपत्रोंको गिनने लगीं ॥

८५–शैलः सम्पूर्णकामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत ।
प्रायेण गृहिणिनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः ॥

८६–मेने मेनापि तत्सर्वं पत्युः कार्य्यमभीप्सितम् ।
भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्त्तुरिष्टे पतिव्रताः ॥

८७–इदमत्रोत्तरं न्याय्यमिति बुद्ध्या विमृष्य सः ।
आददे वचसामन्ते मंगलालंकृतां सुताम् ॥

८८–एहि विश्वात्मने वत्से ! भिक्षासि परिकल्पिता ।
अर्थिनो मुनयः प्राप्तं गृहमेधिफलं मया ॥

८९–एतावदुक्त्वा तनयामृषीनाह महीधरः ।
इयं नमति वः सर्वान् त्रिलोचनवधूरिति ॥

९०–ईप्सितार्थक्रियोदारं तेऽभिनन्द्य गिरेर्वचः ।
आशीर्भिरेधयामासुः पुरःपाकाभिरम्बिकाम् ॥

९१–तां प्रणामादरस्रस्तजाम्बूनदवतंसकाम् ।
अंकमारोपयामास लज्जमानामरुन्धती ॥

९२–तन्मातरञ्चाश्रुमुखीं दुहितृस्नेहविक्लवाम् ।
वरस्यानन्यपूर्वस्य विशोकामकरोद्गुणैः ॥

९३–वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्क्षणं हरबन्धुना ।
ते त्र्यहादूर्ध्वमाख्याय चेरुश्चीरपरिग्रहाः ॥

८५–हिमवान् देनेको निश्चयकरके भी मेनाके मुखको देखने लगा बहुधा गृहस्थलोग कन्याके प्रयोजनों में स्त्रीरूप नेत्रवाले होतेहैं ॥

८६–मेना ने भी हिमालयके उस सम्पूर्ण कार्य्यको अंगीकार किया पतिव्रता पतिके वांछित में व्यभिचारिणी (हानि करने वाली) नहीं होतीहैं ॥

८७–उस हिमवान् ने मुनियों के वचनों के अनन्तर यहां पर यह उत्तर योग्य है ऐसा बुद्धिसे शोचकर मंगलपूर्वक अलंकृत कन्याका ग्रहण किया ॥

८८–हे वत्से आओ तुम्हें (मैंने) शिवजीके निमित्त भिक्षाबनायाहै मांगनेवाले मुनिलोगहैं मैंने गृहस्थका फलपाया ॥

८९–हिमवान्ने कन्यासे ऐसा कहकर ऋषियों से कहा कि यह शिवजीकी स्त्री आप सब लोगोंको प्रणामकरतीहै ॥

९०–उन (मुनिलोगों) ने वांछित अर्थ के करनेसे बड़े हिमवान्के वचनकी स्तुतिकरके पार्वती को आगे फल वाले आशीर्वादों से बढ़ाया ॥

९१–प्रणामके आदर से गिरेहैं सुवर्ण के कुंडल जिसके ऐसी लज्जावती उस (पार्वती)को अरुन्धतीने गोदमें बैठाया॥

९२–कन्याके स्नेहसे व्याकुल अश्रुमुखी उस (पार्वती) की माताको सपत्नी के दुःखको नहीं करने वाले वरके गुणों से विशोक किया ॥

९३–वल्कल के वस्त्रवाले तपस्वी लोग उसी क्षण में हिमवान्से विवाह के योग्य तिथिके लिये पूछेगये तीन दिनके ऊपर (चौथे दिन विवाह है यह) कहकर चले ॥

९४-ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम्।
सिद्धञ्चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः समुद्ययुः ॥

९५-पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्रा-
दगमयदद्रिसुतासमागमोत्कः।
कमपरमवशं न विप्रकुर्य्यु-
र्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
उमाप्रदानो नाम षष्ठस्सर्गः ॥ ६ ॥

९४—वह मुनिलोग हिमाचलसे पूछकर फिर शिवजीको प्राप्त होकर सिद्ध प्रयोजनको उनसे निवेदन करके उनसे छोड़ेहुए (बिदाहुए) आकाशको गये ॥

९५—पार्वतीजी के समागममें उत्सुक शिवजी ने भी वह तीन दिन दुःखसे व्यतीत किये यह भाव इन्द्रिय से परतंत्र और किस जनको विकारयुक्त न करें जिस कारण से समर्थ उन (शिवजी) को भी विकारयुक्त करते हैं ॥

इतिश्री कालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये भाषानुवादे उमाप्रदानो नाम षष्ठस्सर्गः ॥ ६ ॥

———

कुमारसम्भवे

सप्तमस्सर्गः ॥

१ – अथौषधीनामधिपस्य वृद्धौ
तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम् ।
समेतबन्धुर्हिमवान् सुताया
विवाहदीक्षाविधिमन्वतिष्ठत् ॥

२ – वैवाहिकैः कौतुकसंविधानै-
र्गृहे गृहे व्यग्रपुरन्ध्रिवर्गम् ।
आसीत् पुरं सानुमतोऽनुरागा-
दन्तःपुरञ्चैककुलोपमेयम् ॥

३ – सन्तानकाकीर्णमहापथं त-
च्चीनांशुकैः कल्पितकेतुमालम् ।
भासोज्ज्वलत्काञ्चनतोरणानां
स्थानान्तरं स्वर्गइवावभासे ॥

४ – एकैव सत्यामपि पुत्रपङ्क्तौ
चिरस्य दृष्टेव मृतोत्थितेव ।
आसन्नपाणिग्रहणेति पित्रो-
रुमा विशेषोच्छ्वसितं बभूव ॥

५ – अंकाद्ययावंकमुदीरिताशीः
सा मण्डनान्मण्डनमन्वभुङ्क्त ।
सम्बन्धिभिन्नोऽपि गिरेः कुलस्य
स्नेहस्तदेकायतनं जगाम ॥

कुमारसम्भवे

उमापरिणयोनाम सप्तमस्सर्गः ॥

१ – इसके उपरान्त हिमवान् ने चन्द्रमाकी वृद्धि (शुक्लपक्ष) में और जामित्रगुण (लग्नसे सप्तम स्थान की शुद्धि) से युक्त तिथिमें बन्धुओं समेत कन्याका विवाह संस्कार कर्म किया ॥

२ – प्रेमसे घरघरमें विवाहके निमित्त मंगल द्रव्यों के इकट्ठे करने से व्याकुल स्त्रियों के समूहवाला हिमवान्का पुर और अन्तःपुर (रणवास) एक घर से उपमा करने के योग्य हुए ॥

३ – कल्पवृक्षके पुष्पोंसे बिछेहुए राजमार्ग वाला रेशमवि-स्त्रोंसे बनीहुई पताकाओं की पंक्तिवाला सुवर्ण की बन्दनवारों के प्रकाश से देदीप्यमान वह पुर अन्यस्थान में स्थित स्वर्ग के समान शोभित हुआ ॥

४ – पुत्र और कन्याओंके समूहों के होने पर भी एक पार्व-तीही बहुत दिनके पीछे देखीहुई के समान मरकर फिर उत्पन्न हुई के समान निकट पाणिग्रहणवाली (है) इस हेतु से माता और पिता के प्राणरूपहुई ॥

५ – वह (पार्वती) आशीर्वादको प्राप्तहोकर गोदियों से गोदि-यों में गई और शृंगारोंसे अन्य शृंगारोंको प्राप्तहुई संब-न्धियोंसे भिन्न भी हिमवान् के वंशकास्नेह उस(पार्वती) रूप एकस्थानको प्राप्तहुआ ॥

६ – मैत्रे मुहूर्त्ते शशलाञ्छनेन
योगं गतासूत्तरफल्गुनीषु ।
तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रु-
र्बन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः ॥

७ – सा गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भि-
र्दूर्वाप्रबालैः प्रतिभिन्नशोभम् ।
निर्नाभिकौशेयमुपात्तवाण-
मभ्यंगनेपथ्यमलञ्चकार ॥

८ – बभौ च सम्पर्कमुपेत्य बाला
नवेन दीक्षाविधिसायकेन ।
करेण भानोर्बहुलावसाने
सन्धुक्ष्यमाणेव शशांकरेखा ॥

९ – तां लोध्रकल्केन हृतांगतैला-
माश्यानकालेयकृतांगरागाम् ।
वासो वसानामभिषेकयोग्यं
नार्य्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः ॥

१०–विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मि-
न्नाबद्धमुक्ताफलभक्तिचित्रे ।
आवर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः
सतूर्य्यमेनां स्नपयाम्बभूवुः ॥

११–सा मंगलस्नानविशुद्धगात्री
गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा ।
निवृत्तपर्जन्यजलाभिषेका
प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे ॥

६ – मैत्र मुहूर्त्त (उदय मुहूर्त्त से तीसरे मुहूर्त्त) में फाल्गुनी नक्षत्र के चन्द्रमा से योग होनेपर उस (पार्वती) के शरीर में पति और पुत्रवाली बन्धुओं की स्त्रियों ने प्रसाधन (आभूषित) किया ॥

७ – उस (पार्वती) ने श्वेत बिखरी श्वेत ससोंवाले दूर्वा के अंकुरों से अधिक शोभावाले नाभिके उल्लंघन करनेवाले कौशेय (वस्त्रविशेष) से युक्त वाणके ग्रहण करनेवाले शरीरके वेश (भेस) को शोभित किया ॥

८ – और बाला (पार्वती) नवीन विवाहकी कृत्यमें वाण से संपर्क (मेल) को पाकर कृष्णपक्ष के अन्त में सूर्य्य की किरण से बढ़ीहुई चन्द्रमा की कला के समान शोभित हुई ॥

९ – लोध्र (लोध) के चूर्ण से नष्ट शरीरके तैलवाली कुछ शुष्क सुगन्धित द्रव्यसे अंगराग करनेवाली अभिषेक के योग्य वस्त्रको धारण करनेवाली उस (पार्वती)को स्त्रियां स्नानके स्थान में लेगईं ॥

१०–बिछेहैं वैदूर्य मणिके शिलातल जिसमें जड़ेहुए मोतियों की रचना से विचित्र इस (गृह) में इस (पार्वती) को झुकायेहुए सुवर्ण के कलशों के जलोंसे मंगलके बाजों समेत स्नान करवाया ॥

११–मंगलके निमित्त स्नानसे निर्मल अंगवाली पतिके धौत वस्त्रको धारण करनेवाली वह (पार्वती) सिद्ध है इन्द्रके जलसे अभिषेक जिसका फूलेहुए काशके पुष्पवाली पृथ्वी के समान शोभितहुई ॥

१२—तस्मात् प्रदेशाच्च वितानवन्तं
युक्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन।
पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये
क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम्॥

१३—तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य तन्वीं
क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः।
भूतार्थशोभाह्रियमाणनेत्राः
प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्य्यः॥

१४—धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं
केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम्।
पर्य्याक्षिपत् काचिदुदारबन्धं
दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना॥

१५—विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरंगं
गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः।
सा चक्रवाकांकितसैकताया-
स्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ॥

१६—लग्नद्विरेफं परिभूय पद्मं
समेघरेखं शशिनश्च विम्बम्।
तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धै-
श्चिच्छेद सादृश्यकथाप्रसंगम्॥

१७—कर्णार्पितो लोध्रकषायरूक्षे
गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे।
तस्याः कपोले परभागलाभाद्
वबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः॥

१२–और उस स्थानसे वितानवाले मणियोंके चार स्तम्भों से युक्त सजेहुए आसनवाली कौतुक की वेदीके मध्यमें पतिव्रता स्त्रियां (उसको) पकड़कर लेगईं ॥

१३–स्त्रियां इस (पार्वती) को वहां पूर्वमुख बैठालकर आगे बैठीहुई शृंगारकी वस्तुओं के समीप होने पर भी स्वाभाविकीय शोभासे हरेगये हैं नेत्र जिनके ऐसी होकर क्षणभर ठहरगईं ॥

१४–किसी ने धूपकी ऊष्मा से नष्टहोगया है गीलापन जिस का भीतर पुष्पवाले इस उस (पार्वती)के केशोंके समूहोंको दूर्वावाली पीली गूलर की माला से उत्तम बन्धन बांधा ॥

१५–इस (पार्वती) के अंगको श्वेत अगर से युक्त और गोरोचनकी पत्र रचनाओं से विशेष चित्रित किया वह (पार्वती) चकवी चकवाओं से युक्त किनारेवाली गंगाजी की कान्तिको उल्लंघन करके स्थितहुई ॥

१६–आभूषित अलकों से लक्षित उस (पार्वती) के मुखकी शोभाने भ्रमरों से युक्त कमलको और मेघकी रेखा से युक्त चन्द्रमा के विम्बको अनादर करके उपमा के कथा प्रसंगको नष्ट करदिया ॥

१७–उस (पार्वती) के कर्णमें प्राप्त यवों के अंकुर ने लोध्रके लगानेसे रूखे गोरोचन के लगानेसे अत्यन्त अरुण कपोलमें वर्णके उत्कर्ष (उत्तमता) की प्राप्ति से देखनेवालों के नेत्रोंको खैंचलिया ॥

१८—रेखाविभक्तः सुविभक्तगात्र्याः
किञ्चिन्मधूच्छिष्टविमृष्टरागः ।
कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्य-
दासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः ॥

१९—पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन
स्पृशेति सख्या परिहासपूर्व्वम् ।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशी-
र्म्माल्येन तां निर्व्वचनं जघान ॥

२०—तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्ते
प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य ।
न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्धया
कालाञ्जनं मंगलमित्युपात्तम् ॥

२१—सा सम्भवद्भिः कुसुमैर्लतेव
ज्योतिर्भिरुद्यद्भिरिव त्रियामा ।
सरिद्विहंगैरिव लीयमानै-
रामुच्यमानाभरणा चकाशे ॥

२२—आत्मानमालोक्य च शोभमान-
मादर्शविम्बे स्तिमितायताक्षी ।
हरोपयाने त्वरिता बभूव
स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेशः ॥

२३—अथांगुलिभ्यां हरितालमार्द्रं
मांगल्यमादाय मनःशिलाञ्च ।
कर्णावसक्तामलदन्तपत्रं
माता तदीयं मुखमुन्नमय्य ॥

१८—अच्छेप्रकार से मिलेहुए अंगवाली पार्वती की रेखा से मिलेहुए सिक्थ (मोम) से निर्मल रागवाले समीप है सौन्दर्य्य का फल जिसका ऐसे ओष्टने फड़कनेसे अनिर्वचनीय शोभा पुष्टकी ॥

१९—सखी से चरणोंमें महावर लगाकर इस (चरण) से शिव जीकी चन्द्रकलाका ताड़नकरो यह परिहासपूर्व्वक (हंसी से) आशीर्वाद दीहुई उस (पार्वती)ने उस(सखी) का मालासे विना कुछकहे ताड़न किया ॥

२०—श्रृंगार करनेवालियोंने कमल के पत्तोंके समान शोभायमान उस (पार्वती) के नेत्रोंको देखकर काले अंजनको नेत्रोंकी शोभा बढ़नेकी बुद्धिसे नहीं ग्रहणकिया किन्तु मंगलकी बुद्धिसे ग्रहण किया ॥

२१—आभूषणोंके धारण करनेवाली वह (पार्वती) उत्पन्नहुए पुष्पोंसे लताके समान उदयको प्राप्त तारागणों से रात्रिके समान बैठेहुए चक्रवाकों से नदी के समान शोभित हुई ॥

२२—और पार्वती शोभायमान्न अपने शरीरको दर्पणमें निश्चल बड़े नेत्रवाली होके देखकर शिवजीकी प्राप्तिमें व्यग्रहुई स्त्रियोंका वेश प्रियका दर्शनहै फल जिसका ऐसाहोताहै॥

यहां से आगे के दो श्लोकों का अन्वय एक है ॥

२३—इसके उपरान्त माताने मंगलके निमित्त आर्द्र हरिताल और मैनसिलको उंगलियोंसे लेकर कर्णमें लगे हैं अमलदन्तपत्र जिसके ऐसे पार्वती के इस मुखको उठाकर॥

२४–उमास्तनोद्भेदमनुप्रवृद्धो
मनोरथो यः प्रथमं बभूव ।
तमेव मेना दुहितुः कथञ्चि-
द्विवाहदीक्षातिलकञ्चकार ॥ युग्मकम् ॥

२५–बबन्ध चास्राकुलदृष्टिरस्याः
स्थानान्तरे कल्पितसन्निवेशम् ।
धात्रांगुलीभिः प्रतिसार्य्यमाण-
मूर्णामयं कौतुकहस्तसूत्रम् ॥

२६–क्षीरोदवेलेव सफेनपुञ्जा
पर्य्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा ।
नवं नवक्षौमनिवासिनी सा
भूयो बभौ दर्पणमादधाना ॥

२७–तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः
कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता ।
अकारयत् कारयितव्यदक्षा
क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम् ॥

२८–अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्यु-
रित्युच्यते ताभिरुमा स्म नम्रा ।
तया तु तस्यार्द्धशरीरभाजा
पश्चात्कृताः स्निग्धजनाशिषोऽपि ॥

२९–इच्छाविभूत्योरनुरूपमद्रि-
स्तस्याः कृती कृत्यमशेषयित्वा ।
सभ्यः सभायां सुहृदास्थितायां
तस्थौ वृषाङ्कागमनप्रतीक्षः ॥

२४–पार्वतीजी के स्तनोंके उदयसे लेकर वृद्धिको प्राप्त जो मनोरथ प्रथमहुआ था मेनकाने कन्याके उसी मनोरथ रूप विवाह की कृत्यमें तिलक किया ॥

२५–और (मेनका) ने इस (पार्वती) के आनन्दके अश्रुपातों से व्याकुल दृष्टिवाली होकर अन्य स्थानमें स्थापित कियागया धात्रीकी उंगलियोंसे अपने स्थानमें प्राप्त कियागया ऊर्णमय मंगलका हस्तसूत्र बांधा ॥

२६–नवीन दुकूल वस्त्रकी धारण करनेवाली नवीन दर्पणको धारण करतीहुई वह (पार्वती) फेनके समूहों समेत समुद्रके किनारे की पृथ्वीके समान पूर्ण चन्द्रमावाली शरद ऋतुकी रात्रिके समान अत्यन्त शोभित हुई ॥

२७–कर्म के उपदेश में कुशल मेनका ने कुलकी प्रतिष्ठारूप उस (पार्वती) को पूजन कियेहुए कुल देवताओं को प्रणाम कराके पतिव्रताओं का पाद ग्रहण क्रमसे कराया ॥

२८–नम्र पार्वती उन पतिव्रताओं से पति(शिवजी)के अक्षत प्रेमको प्राप्तहो यह कही गई और उन शिवजी के अर्ध शरीरको प्राप्तहोनेवाली उस (पार्वती) ने बन्धुजनों के आशीर्वाद नीचे करदिये ॥

२९–कुशल सभ्य हिमवान् उत्साह और ऐश्वर्य्य के सदृश पार्वतीजी के कृत्यको समाप्तकरके बन्धुओंसे भरीहुई सभामें शिवजी के आगमनकी बाटदेखतेहुए स्थित हुए ॥

३०—तावद्भवस्यापि कुबेरशैले
तत्पूर्वपाणिग्रहणानुरूपम्।
प्रसाधनं मातृभिराहृताभि-
र्न्यस्तं पुरस्तात् पुरशासनस्य॥

३१—तद्गौरवान्मङ्गलमण्डनश्रीः
सा पस्पृशे केवलमीश्वरेण।
स एव वेशः परिणेतुरिष्टं
भावान्तरं तस्य विभोः प्रपेदे॥

३२—बभूव भस्मैव सितांगरागः
कपालमेवामलशेखरश्रीः।
उपान्तभागेषु च रोचनाङ्को
गजाजिनस्यैव दुकूलभावः॥

३३—शङ्खान्तरद्योति विलोचनं य-
दन्तर्निविष्टामलपिंगतारम्।
सान्निध्यपक्षे हरितालमय्या-
स्तदेव जातं तिलकक्रियायाः॥

३४—यथाप्रदेशं भुजगेश्वराणां
करिष्यतामाभरणान्तरत्वम्।
शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे
तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः॥

३५—दिवापि निष्ठ्यूतमरीचिभासा
बाल्यादनाविष्कृतलाञ्छनेन।
चन्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नमौले-
श्चूडामणेः किं ग्रहणं हरस्य॥

३०–उसी समय कैलासमें उसीप्रथम पाणिग्रहण के सदृश अलंकारकी सामग्री आदरके साथ ब्राह्मी आदिक सप्त मातृकाओंने शिवजी के आगे रक्खी ॥

३१–शिवजी ने उस मंगलके अलंकारकी सामग्री उनके गौरवसे केवल स्पर्श करली किन्तु उन शिवजी का वही वेश विवाह करनेवालेको अपेक्षित अन्यरूपको प्राप्तहुआ॥

३२–भस्महीं श्वेत अंगराग (श्वेत गंधलेप) हुई कपालहीअमल शिरके भूषणकी शोभाहुआ और गजचर्महीका किनारोंमें गोरोचनके चिह्नवाला दुकूल वस्त्र बनाहुआ ॥

३३–ललाटकी हड्डीके मध्यमें दीप्तिमान मध्यमें प्राप्त अमल पीत पुतली वाला नेत्रही हरितालमय तिलककी क्रिया की समीपतामें हुआ ॥

३४–स्थानोंको नहीं उल्लंघन करके अन्य आभरणोंको उत्पन्न कररहे सर्पोंका शरीरही विकारको प्राप्तहुआ फणकी मणियोंकी शोभा उसीप्रकार से स्थितरहीं ॥

३५–दिनमें भी फैलीहुई किरणकी दीप्तिवाले अल्पशरीरहोने से कलंक के नहीं प्रकट करनेवाले चन्द्रमासे सर्वदा मिलेहुए मुकुटवाले शिवजी को चूड़ामणि के ग्रहण से क्या ॥

३६–इत्यद्भुतैकप्रभवः प्रभावात्
प्रसिद्धनेपथ्यविधेर्विधाता ।
आत्मानमासन्नगणोपनीते
खड्गे निषिक्तप्रतिमं ददर्श ॥

३७–स गोपतिं नन्दिभुजावलम्बी
शार्दूलचर्म्मान्तरितोरुपृष्ठम् ।
तद्भक्तिसंक्षिप्तबृहत्प्रमाण-
मारुह्य कैलासमिव प्रतस्थे ॥

३८–तं मातरो देवमनुव्रजन्त्यः
स्ववाहनक्षोभचलावतंसाः ।
मुखैः प्रभामण्डलरेणुगौरैः-
पद्माकरं चक्रुरिवान्तरीक्षम् ॥

३९–तासाञ्च पश्चात् कनकप्रभाणां
काली कपालाभरणा चकाशे ।
वलाकिनी नीलपयोदराजी
दूरं पुरःक्षिप्तशतह्रदेव ॥

४०–ततो गणैः शूलभृतः पुरोगै-
रुदीरितो मंगलतूर्य्यघोषः ।
विमानशृंगाण्यवगाहमानः
शशंस सेवावसरं सुरेभ्यः ॥

४१–उपाददे तस्य सहस्ररश्मि-
स्त्वष्ट्रा नवं निर्मितमातपत्रम् ।
स तद्दुकूलादविदूरमौलि-
र्बभौ पतद्गंग इवोत्तमांगे ॥

३६—इसप्रकार की सामर्थ्य से प्रसिद्ध वेशके विधानके निर्माणकरनेवाले आश्चर्य्यों के एक कारण उन शिवजी ने समीप में प्राप्त गणसे लायेहुए खड्गमें पड़ा है प्रतिविम्ब जिसका ऐसा अपने को देखा ॥

३७—वह (शिवजी) नन्दीश्वरकी भुजाका अवलम्बन करके व्याघ्रके चर्म से आच्छादित बड़ीपीठवाले उन(शिवजी) में भक्तिसे संकोचित है बड़ा प्रमाण जिसका ऐसे कैलासके समान बैलपर चढ़कर चले ॥

३८—उन शिवजी के पीछे जाती हुई अपने वाहनों के कम्पायमान होने से चञ्चल कुण्डल वाली सप्तमातृकाओं ने प्रभामण्डलरूपी पराग के द्वारा रक्त मुखों से आकाश को पद्माकर के समान किया ॥

३९—सुवर्ण के समान वर्णवाली उन (सप्त मातृकाओं) के पीछे कपाल के भूषण वाली काली बगले वाली दूरसे आगे बिजालियों की फैलाने वाली श्याम मेघों की पंक्ति के समान शोभित हुई ॥

४०—उसके अनन्तर शिवजी के आगे चलने वाले गणों से उत्पन्न की गई विमानके शृंगों को प्राप्त होरही मंगल के बाजोंकी ध्वनिमें देवताओं से सेवा का अवसर कहा ॥

४१—उन(शिवजी) का सूर्य्यने विश्वकर्म्मासे बनाया हुआ नवीन आतपत्र (छत्र) ग्रहण किया उसने दुकूलवस्त्र से वह (शिवजी) शिरमें गिरती हुई गंगा वाले के समान शोभित हुए ॥

४२–मूर्त्ते च गंगायमुने तदानीं
सचामरे देवमसेविषाताम् ।
समुद्रगारूपविपर्य्ययेऽपि
सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे ॥

४३–तमभ्यगच्छत् प्रथमोविधाता
श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात् ।
जयेति वाचा महिमानमस्य
संवर्द्धयन्तौ हविषेव वह्निम् ॥

४४–एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा
सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचित्
वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥

४५–तं लोकपालाः पुरुहूतमुख्याः
श्रीलक्षणोत्सर्गविनीतवेषाः ।
दृष्टिप्रदाने कृतनन्दिसंज्ञा-
स्तद्दर्शिताः प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥

४६–कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं,
वाचा हरिं, वृत्रहणं, स्मितेन ।
आलोकमात्रेण सुरानशेषान्,
सम्भावयामास यथाप्रधानम् ॥

४२–मूर्त्तिको धारण करती हुईं चामर को धारण कररहीं नदी रूपके न होने परभी हंसके संचार (बैठने) वालियों की समान दिखाई पड़रहीं (ऐसी) गंगा और यमुनाने शिवजीकी सेवा की ॥

४३–जय शब्दसे इन (शिवजी) की महिमा को हवि (साकल्य) से अग्नि के समान बढ़ाते हुए ब्रह्मा और विष्णु साक्षात् उन (शिवजी) को प्राप्त हुए ॥

४४–वह एकही मूर्त्ति तीन प्रकार से बटी हुई है इन तीनों का बड़ा छोटापन साधारण है कदाचित् विष्णु के शिव आद्य (पूर्व) हैं कदाचित् उन (शिव) के हरि आद्य हैं कदाचित् उन (हरि और हर) के ब्रह्मा आद्य हैं कदाचित् वह (हरि और हर) ब्रह्मा के आद्य हैं ॥

४५–ऐश्वर्य्य के चिह्नों के त्याग करने से विनीत (नम्र) वेशवाले होकर दर्शन के निमित्त नन्दीसे सञ्ज्ञा (संकेत) करने वाले उस नन्दीश्वरसे दिखायेहुए इन्द्रादिक लोकपालोंने हाथ जोड़कर उन (शिवजी) को प्रणामकिया ॥

४६–उन (शिवजी) ने ब्रह्माको शिर के कंपाने से विष्णुको वाणीसे इन्द्रको मन्द हास्य से सम्पूर्ण देवताओंको दृष्टिमात्रसे इस प्रकार यथा योग्य सम्भावन (शिष्टाचार) किया ॥

४७–तस्मै जयाशीः ससृजे पुरस्तात्
सप्तर्षिभिस्तान् स्मितपूर्बमाह ।
विवाहयज्ञे विततेऽत्र यूय-
मध्वर्य्यवः पूर्बवृता मयेति ॥

४८–विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः
संगीयमानत्रिपुरावदानः ।
अध्वानमध्वान्तविकारलंघ्य-
स्ततार ताराधिपखण्डधारी ॥

४९–खे खेलगामी तमुवाह वाहः
सशब्दचामीकरकिङ्किणीकः ।
तटाभिघातादिव लग्नपङ्के
धुन्वन् मुहुः प्रोतघने विषाणे ॥

५०–स प्रापदप्राप्तपराभियोगं
नगेन्द्रगुप्तं नगरं मुहूर्त्तात् ।
पुरोविलग्नैर्हरदृष्टिपातैः
सुवर्णसूत्रैरिव कृष्यमाणः ॥

५१–तस्योपकण्ठे घननीलकण्ठः
कुतूहलादुन्मुखपौरदृष्टः ।
स्ववाणचिह्नादवतीर्य्य मार्ग्गा-
दासन्नभूपृष्ठमियाय देवः ॥

५२–तमृद्धिमद्बन्धुजनाधिरूढै-
र्वृन्दैर्गजानां गिरिचक्रवर्त्ती ।
प्रत्युज्जगामागमनप्रतीतः
प्रफुल्लवृक्षैः कटकैरिव स्वैः ॥

४७—उन (शिवजी) को आगे सप्तर्षियों ने जयका आशीर्वाद दिया उन (सप्तर्षियों) से हासपूर्वक कहा कि बड़े विवाहरूपी यज्ञ में आप लोग हमसे पहलेही प्रार्थना किये गये यज्ञ कराने वाले हो ॥

४८—विश्वावसु (गन्धर्व) को आदि लेके प्रवीणों से गाया गया है त्रिपुर का वध जिनका मोह के विकारसे उल्लंघन करने के नहीं योग्य चन्द्रमा के खण्डके धारण करने वाले (शिवजी) मार्ग के पारगये ॥

४९—आकाश में अच्छे प्रकार से चलनेवाला शब्दायमान सुवर्ण की क्षुद्रघण्टिका वाला जटित मेघवाले मानों किनारोंमें टक्कर लगानेसे लगीहै कीचड़ जिनमें ऐसे शृंगोंको वारंवार कंपाता हुआ बैल उन (शिवजी) को ले चला ॥

५०—वह वाहन नहीं प्राप्त है शत्रुका दबाना जिसको ऐसे हिमवान् से रक्षित पुरमें आगे प्राप्त सुवर्णसूत्र रूपी शिव जी के दृष्टिपातों से खींचे गये के समान प्राप्त हुआ ॥

५१—उस पुरके समीप मेघके समान नीले कण्ठ वाले कुतूहल से उन्मुख पुरवासियों से देखे गये शिवजी अपने वाणके चिह्नवाले मार्ग से उतरकर समीप के पृथ्वीतलमें प्राप्त हुए ॥

५२—शिवजीके आगमनसे प्रसन्न पर्वतों का राजा हिमवान् द्रव्यवान् बन्धुओं से चढ़े गये हाथियों के समूहोंसे मानों प्रफुल्लित वृक्षवाले अपने नितम्बोंसे उन (शिवजी)को आगे चलकर प्राप्त हुआ ॥

५३–वर्गावुभौ देवमहीधराणां
द्वारे पुरस्योद्घटितापिधाने ।
समीयतुर्दूरविसर्पिघोषौ
भिन्नैकसेतू पयसामिवौघौ ॥

५४–ह्रीमानभूद्भूमिधरो हरेण
त्रैलोक्यवन्द्येन कृतप्रणामः ।
पूर्वं महिम्ना सहि तस्य दूर-
मावर्जितं नात्मशिरो विवेद ॥

५५–स प्रीतियोगाद्विकसन्मुखश्री-
र्जामातुरग्रेसरतामुपेत्य ।
प्रावेशयन्मन्दिरमृद्धमेन-
मागुल्फकीर्णापणमार्गपुष्पम् ॥

५६–तस्मिन् मुहूर्त्ते पुरसुन्दरीणा-
मीशानसन्दर्शनलालसानाम् ।
प्रासादमालासु बभूवुरित्थं
त्यक्तान्यकार्य्याणि विचेष्टितानि ॥

५७–आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या
कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बन्धुं न सम्भावितएव तावत्
करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥

५८–प्रसाधिकालम्बितमग्रपाद-
माक्षिप्य काचित् द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षा-
दलक्तकांकां पदवीं ततान ॥

५३—दूरजाने वाला है शब्द जिनका ऐसे देवता और पर्वतों के दोनों समूह खुले हुए कपाट वाले पुरके द्वारमें एक सेतुके विदीर्ण करने वाले पानी के समूहों के समान मिले ॥

५४—हिमवान् त्रैलोक्य के नमस्कार करने के योग्य शिवजी से प्रणाम किया गया होकर लज्जित हुआ जिस कारण से उस (हिमवान्) ने पहलेही शिवजीकी महिमा से अत्यन्त झुके हुए अपने शिरको नहीं जाना ॥

५५—प्रेमके योगसे देदीप्यमान मुखकी शोभा वाले उस (हिमवान्) ने जामाता के आगे चलकर इन (शिवजी) को गुल्फ (टकने) बिछे हैं बजारके मार्ग में पुष्प जहां ऐसे धनाढ्य नगरमें प्रवेश कराया ॥

५६—उस समय शिवजीके देखने की उत्कण्ठा वाली पुरकी स्त्रियों के गृहों के समूहों में इस प्रकार के छूटे हैं अन्य कार्य्य जिनमें ऐसे व्यापार हुए ॥

५७—झरोखे के मार्गको सहसा (एकाएकी) जातीहुई किसी स्त्रीने टूटे बन्धनवाला गिरा है माल्य जिससे ऐसा हाथ से ग्रहण भी कियागया केशपाश तबतक (झरोखेमें पहुंचने तक) बांधने को नहीं स्मरण किया ॥

५८—किसी स्त्रीने शृंगार करनेवाली से ग्रहण कियेगये टपकतेहुए रागवाले आगे के चरणको खेंचकर त्याग किया है मन्दगमन जिसने ऐसी होकर झरोखे तक लाक्षा रस (महावर) के चिह्नवाली पदवी बनाई ॥

५९–विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन
सम्भाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसन्निकर्षं
ययौ शलाकामपरा वहन्ती॥

६०–जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या
प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण
हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः॥

६१–अर्द्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः
पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानी-
मंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा॥

६२–तासां मुखैरासवगन्धगर्भै-
र्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः
सहस्रपत्राभरणा इवासन्॥

६३–तावत् पताकाकुलमिन्दुमौलि-
रुत्तोरणं राजपथं प्रपेदे।
प्रासादशृंगाणि दिवापि कुर्व्वन्
ज्योत्स्नाभिषेकद्विगुणद्युतीनि॥

६४–तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो
नार्य्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां
सर्व्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा॥

५९—अन्य स्त्री दक्षिण नेत्रको अंजन से आभूषित करके अंजनसे रहित वामनेत्रवाली होकर उसी रूपसे शलाकाको धारण करती हुई झरोखे के समिप गई ॥

६०—अन्य स्त्रीने झरोखे के मध्यमें फैली दृष्टिवाली होकर गमन से खुलीहुई वस्त्रकी ग्रन्थी नहीं बांधी किन्तु नाभि में प्रविष्ट आभूषणों के प्रभावाले हाथसे वस्त्रको पकड़ कर स्थितहुई ॥

६१—शघ्रितासे उठी हुई किसी की आधी पुही हुई दुःख से रक्खे हुए पद पद पर गिरती हुई क्षुद्रघण्टिका उस समय अंगुष्ठके मूल में लगा है केवल सूत्र जिसका ऐसी हुई ॥

६२—उस समय बड़े कुतूहल वाली उन (स्त्रियों) के मदिरा की सुगन्धि वाले चञ्चल नेत्ररूपी भ्रमर वाले मुखों से व्याप्त हैं मध्य जिनके ऐसे झरोखे मानों कमलों के आभूषण वाले हुए ॥

६३—उसी समय शिवजी दिन में भी गृहों के शृंगोंको चन्द्रिका करके स्नान करवाने से द्विगुण दीप्ति वाले करतेहुए पताकाओं से व्याप्त ऊंचे तोरण वाले राज मार्गमें प्राप्त हुए ॥

६४—एकही दर्शनकरने के योग्य उन शिवज़ीको नेत्रों से पान करती हुई स्त्रियां अन्य विषयों को नहीं प्राप्त हुईं जैसा कहते हैं कि इन (स्त्रियों) की सम्पूर्ण इन्द्रियों की प्रवृत्ति स्वरूप की आधिक्यता से मानों नेत्रों में प्रवेशकरगई ॥

६५–स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थ-
मपर्णया पेलवयापि तप्तम्।
या दास्यमप्यस्य लभेत नारी
सा स्यात् कृतार्था किमुताङ्कशय्याम्॥

६६–परस्परेण स्पृहणीयशोभं
न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः
पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्॥

६७–न नूनमारूढरुषा शरीर-
मनेन दग्धं कुसुमायुधस्य।
व्रीडादमुं देवमुदीक्ष्य मन्ये
संन्यस्तदेहः स्वयमेव कामः॥

६८–अनेन सम्बन्धमुपेत्य दिष्ट्या
मनोरथप्रार्थितमीश्वरेण।
मूर्द्धानमालि! क्षितिधारणोच्च-
मुच्चैस्तरं वक्ष्यति शैलराजः॥

६९–इत्यौषधिप्रस्थविलासिनीनां
शृण्वन् कथाः श्रोत्रसुखास्त्रिनेत्रः।
केयूरचूर्णीकृतलाजमुष्टिं
हिमालयस्यालयमाससाद॥

७०–तत्रावतीर्य्याच्युतदत्तहस्तः
शरद्घनाद्दीधितिमानिवोक्ष्णः।
क्रान्तानि पूर्वं कमलासनेन
कक्ष्यान्तराण्यद्रिपतेर्विवेश॥

६५–कोमल भी पार्वती ने इन शिवजी के निमित्त योग्य दुश्चर तप किया क्योंकि जो स्त्री इन (शिवजी) के दासीपन को भी प्राप्त होजाय वह कृतार्थ होय और जो गोदी रूपी शय्या को प्राप्त होय उसका क्या कहना है ॥

६६–चाहने के योग्य रूप वाले इस जोड़े को जो परस्पर नहीं मिलाते तो ब्रह्मा का इस जोड़े में रूप बनाने का परिश्रम व्यर्थ होजाता ॥

६७–उत्पन्न हुए क्रोधवाले इन (शिवजी) से अवश्य कामदेव का शरीर नहीं जलाया गया किन्तु कामने इन (शिवजी) को देखकर लज्जासे आपही शरिर त्यागकर दिया यह मानते हैं ॥

६८–हे सखी हिमवान् आनन्दपूर्वक मनोरथों से प्रार्थना किये हुए इन शिवजी से सम्बन्ध को प्राप्त होकर पृथ्वी के धारण से उन्नत शिर को अत्यन्त उन्नत धारण करेगा ॥

६९–शिवजी इस प्रकार से औषधि प्रस्थकी स्त्रियों के कर्णों के सुख देने वाले वचनों को सुनते हुए बाजुओं से चूर्ण हैं खीलों की मुट्ठियां जिसमें ऐसे हिमालय के भवन में प्राप्त हुए ॥

७०–वहां विष्णु ने दिया है हस्त का सहारा जिनको शरद काल के मेघसे सूर्य्य के समान उष्ण बैलसे उतरकर विष्णु से पहले प्रवेश किये हुए हिमवान् के घरके कोठों में प्रवेश किया ॥

७१–तमन्वगिन्द्रप्रमुखाश्च देवाः
सप्तर्षिपूर्वाः परमर्षयश्च।
गणाश्च गिर्य्यालयमभ्यगच्छन्
प्रशस्तमारम्भमिवोत्तमार्थाः॥

७२–तत्रेश्वरो विष्टरभाग्यथावत्
सरत्नमर्घ्यं मधुमच्च गव्यम्।
नवे दुकूले च नगोपनीतं
प्रत्यग्रहीत् सर्वममन्त्रवर्ज्जम्॥

७३–दुकूलवासाः स वधूसमीपं
निन्ये विनीतैरवरोधदक्षैः।
वेलासमीपं स्फुटफेनराजि
नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः॥

७४–तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या
प्रफुल्लचक्षुः कुमुदः कुमार्य्या।
प्रसन्नचेतः सलिलः शिवोऽभूत्
संसृज्यमानः शरदेव लोकः॥

७५–तयोः समापत्तिषु कातराणि
किञ्चिद्व्यवस्थापितसंहृतानि।
ह्रीयन्त्रणां तत्क्षणमन्वभूव-
न्नन्योन्यलोलानि विलोचनानि॥

७६–तस्याः करं शैलगुरूपनीतं
जग्राह ताम्रांगुलिमष्टमूर्त्तिः।
उमातनौ गूढतनोः स्मरस्य
तच्छङ्किनः पूर्वमिव प्ररोहम्॥

७१–उन (शिवजी) के पीछे इन्द्रादिक देवता और सप्तर्षियों को आदि लेकर सनकादिक महर्षि और गण अमोघ आरम्भ के उत्तम प्रयोजनों के समान हिमवान् के मन्दिर में प्रवेश करते भये ॥

७२–वहां आसनपर बैठे हुए शिवजीने हिमवान् से लायेहुए विधिपूर्व्वक रत्नों समेत अर्घ्य और मधुपर्क और नवीन दुकूल वस्त्र सम्पूर्ण मन्त्रों समेत ग्रहण किया ॥

७३–इसके उपरान्त दुकूल वस्त्र को धारण करतेहुए शिवजी को नम्र रणवासमें चतुर बधूके समीप लेगये प्रकाशमान फेणों के समूह वाले समुद्रको किनारे के समीपमें चन्द्र मा की किरणों के समान ॥

७४–बढ़ीहुई मुख रूपी चन्द्रमाकी कान्ति वाली कुमारी से शरदऋतुसे लोकके समान मिले हुए शिवजी फूले हुए कुमुदरूपी नेत्र वाले प्रसन्न जलके समान चित्त वाले हुए ॥

७५–उन(बधू और वर) के स्वाभाविक मिलने से चकित कुछ स्थिर किये गये और पीछेसे निवृत्त किये गये परस्पर तृष्णा समेत नेत्र उस क्षण में लज्जासे संकोचको प्राप्त हुए ॥

७६–शिवजी ने उन (शिवजी) से डरे हुए पार्वती के शरीर में शरीर के छिपाने वाले कामदेव के प्रथम अंकुर के समान स्थित हिमवान् से दिया हुआ रक्त अंगुलिवाला पार्वती जी का हस्त ग्रहण किया ॥

७७–रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः
स्विन्नांगुलिः पुंगवकेतुरासीत् ।
वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन
समं विभक्तेव मनोभवस्य ॥

७८–प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्य-
द्वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम् ।
सान्निध्ययोगादनयोस्तदानीं
किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ॥

७९–प्रदक्षिणप्रक्रमणात् कृशानो-
रुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकाशे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्त्तमान-
मन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥

८०–तौ दम्पती त्रिः परिणीय वह्नि-
मन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ ।
स कारयामास बधूं पुरोधा-
स्तस्मिन् समिद्धार्चिषि लाजमोक्षम् ॥

८१–सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं
गुरूपदेशाद्वदनं निनाय ।
कपालसंसर्पिशिखः स तस्या
मुहूर्त्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥

८२–तदीषदार्द्रारुणगण्डलेख-
मुच्छ्वासिकालाञ्जनरागमक्ष्णोः ।
बधूमुखं क्लान्तयवावतंस-
माचारधूमग्रहणाद् बभूव ॥

७७–पार्वतीजी के रोमाञ्च उत्पन्नहुआ शिवजी स्वेदसंयुक्त उंगलीवाले हुए हाथों के मिलनेसे उन (बधू और वर) में कामकी स्थिति मानों बराबर बांट दी गई ॥

७८–जिस कारण से प्राप्त पाणिग्रहण वाले लौकिक बधू और वर पाणिग्रहण के समय इन (शिव और पार्वती) की निकटतासे उत्तम शोभा को पुष्ट करते हैं उन दोनों (शिव और पार्वती) की शोभा क्या कही जाय ॥

७९–वह जोड़ा ऊंची ज्वाला वाले अग्नि की प्रदक्षिणा करने से शोभित हुआ मेरु के किनारों में वर्त्तमान परस्पर मिले हुए दिन और रात्रि के समान ॥

८०–उस पुरोहित ने परस्पर स्पर्श करने से नेत्रों के मूंदने वाले स्त्री और पुरुषको तीनवार अग्नि की प्रदक्षिणा कराके दीप्तिमान ज्वाला वाले अग्नि में बधू से खीलें गिरवाईं ॥

८१–उस बधूने पुरोहित के उपदेशसे वांछित खीलों की धूमांजलि मुख में प्राप्त की कपोल में प्राप्तहै शिखा जिसकी ऐसा वह धूम उस (पार्वती) के मुहूर्त्तमात्र कपोल में कमलपने को प्राप्त हुआ ॥

८२–वह बधूका मुख आचार के (रीति चाल के) धूमके ग्रहण करने से कुछस्वेदयुक्त और अरुण गण्डस्थलवाला नेत्रों में जातेहुए काले अञ्जन के रागवाला म्लान यव के अंकुर के कर्णफूल वाला हुआ ॥

८३–वधूं द्विजः प्राह तवैष वत्से !
वह्निर्विवाहं प्रति कर्म्मसाक्षी ।
शिवेन भर्त्रा सह धर्म्मचर्य्या
कार्य्या त्वया मुक्तविचारयेति ॥

८४–आलोचनान्तं श्रवणे वितत्य
पीतं गुरोस्तद्वचनं भवान्या ।
निदाघकालोल्वणतापयेव
माहेन्द्रमम्भः प्रथमं पृथिव्या ॥

८५–ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय
प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन ।
सा दृष्टइत्याननमुन्नमय्य
ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच ॥

८६–इत्थं विधिज्ञेन पुरोहितेन
प्रयुक्तपाणिग्रहणोपचारौ ।
प्रणेमतुस्तौ पितरौ प्रजानां
पद्मासनस्थाय पितामहाय ॥

८७–वधूर्विधात्रा प्रतिनन्द्यते स्म
कल्याणि ! वीरप्रसवा भवेति ।
वाचस्पतिः सन्नपि सोऽष्टमूर्त्तौ
त्वाशास्य चिन्तास्तिमितोबभूव ॥

८८–कृप्तोपचारां चतुरस्रवेदीं
तावेत्य पश्चात् कनकासनस्थौ ।
जायापती लौकिकमेषणयि-
माद्रीक्षतारोपणमन्वभूताम् ॥

८३–इसके उपरान्त बधू से पुरोहितने कहा कि हे वत्से यह अग्नि तुम्हारे विवाह कर्म में साक्षी है शिवजी के साथ विचार को छोड़कर तुम्हें धर्माचार करना चाहिये ॥

८४–पार्वतीनि नेत्र पर्य्यन्त कर्णों को फैलाकर वह गुरू का वचन ग्रीष्म ऋतु में आद्य इन्द्रके जल को बड़े ताप वाली पृथ्वी के समान पिया ॥

८५–प्रियदर्शन वाले (और) निरन्तर रहने वाले पतिसे ध्रुवजी के दर्शन के निमित्त प्रेरणा की गई लज्जा से हीन स्वरवाली उस (बधू) ने किसी प्रकार से मुखको उठाकर देखलिया ऐसा शब्द उच्चारण किया ॥

८६–इस प्रकार विधिके जाननेवाले पुरोहित से किये हुए विवाह कर्म वाले प्रजाओं के माता और पिता उन (शिव और पार्वती) ने पितामह (ब्रह्मा) को प्रणाम किया ॥

८७–बधू ब्रह्मा जी से हे शोभने वीर को उत्पन्न करने वाली हो यह आशीर्वाद दी गई वह ब्रह्मा वागीश्वर भी होकर शिवजी में वांछित के विचार में मन्दहुए ॥

८८–उन (बधू और वरों) ने पीछे निर्मित उपचार (पुष्प चन्दनादिक) वाली चौकोनी वेदी को प्राप्त होकर सुवर्णके आसन पर बैठकर लौकिक वांछा करनेके योग्यगिले अक्षतों का आरोपण (काम में लाना) अनुभवकिया ॥

८९–पत्रान्तलग्नैर्जलविन्दुजालै-
राकृष्टमुक्ताफलजालशोभम् ।
तयोरुपर्य्यायतनालदण्ड-
माधत्त लक्ष्मीः कमलातपत्रम् ॥

९०–द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन
सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव ।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं
वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन ॥

९१–तौ सन्धिषु व्यञ्जितवृत्तिभेदं
रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागम् ।
अपश्यतामप्सरसां मुहूर्त्तं
प्रयोगमाद्यं ललितांगहारम् ॥

९२–देवास्तदन्ते हरमूढभार्य्यं
किरीटबद्धाञ्जलयो निपत्य ।
शापावसाने प्रतिपन्नमूर्त्ते-
र्ययाचिरे पञ्चशरस्य सेवाम् ॥

८९—लक्ष्मी ने दलों के अन्त में लगे हुए जल विन्दुओं से मोती के समूह की शोभा के खैंचने वाले बड़ी नाल-रूपी दण्ड वाले कमलरूपी आतपत्र को उनके ऊपर लगाया ॥

९०—इसके उपरान्त सरस्वती ने दो प्रकार (प्राकृत और संस्कृत) से उच्चारण किये हुए शब्दों के समूह से उस जोड़े की स्तुति की संस्कार से पवित्र (संस्कृत) से प्रशंसाकरने के योग्य शिवजी को सुखसे ग्रहण करने के योग्य रचना वाले शब्दोंके समूह (प्राकृत) से बधूको॥

९१—उन (शिव और पार्वती) ने सन्धियों में प्रकट वृत्तिके भेदवाला रसके भेदों में नियम से प्रवर्तित रागवाला ललित अंगके विक्षेपवाला आद्य अप्सराओं का नाटक मुहूर्त्तभर देखा ॥

९२—देवताओं ने इसके अनन्तर विवाह करने वाले शिवजी को शिर में अञ्जलि को बांधकर प्रणाम करके शाप के अन्तमें शरीर को प्राप्त होनेवाले कामकी सेवा मांगी ॥

---

(१) संधि एक नाटक का अंगहै वह पांचप्रकार का होताहै अर्थात् मुख—प्रति-[illegible]—गर्भ—अवमर्ष—उपसंहृति—

(२) वृत्तिचारप्रकार की होतीहै अर्थात् कौशिकी—आरभटी सात्वती—भारती—[illegible]ों में नाटक होताहै रस आठप्रकारके काव्यमेंहैं—अर्थात् शृंगार--हास्य करुणा—[illegible]—वीर—भयानक—वीभत्स—अद्भुत और कोई २ शान्त रसभी कहते हैं इन्हीं को [illegible]से रागोंकी प्रवृत्ति होतीहै जैसे रौद्र अद्भुत—वीर इनरसों में पुरुष रागसे गान [illegible] जाता और शृंगार हास्य करुणा इनमें स्त्री रागसे और भयानक बीभत्स—[illegible]—इनमें नपुंसक रागसे—

९३–तस्यानुमेने भगवान् विमन्यु-
र्व्यापारमात्मन्यपि सायकानाम्।
कालप्रयुक्ता खलु कार्य्य(काल) विद्भि-
र्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति॥

९४–अथ विबुधगणांस्तानिन्दुमौलिर्विसृज्य
क्षितिधरपतिकन्यामाददानः करेण।
कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं
क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात्॥

९५–नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं
वदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीशः।
अपि शयनसखीभ्यो दत्तवाचं कथञ्चित्
प्रमथमुखविकारैर्हासयामास गूढम्॥

इति श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
उमाप्रदानो नाम सप्तमस्सर्गः॥ ७॥

——————